ओ३म्

आर्यसमाज गौरवादर्श

ठा० रामहर्षसिंहजी वर्म्मा

मंत्री आर्यसमाज कटाँवाँ ज़िला सुल्तानपुर

द्वारा लिखित।

जिसमें—विविध प्रमाणादि और युक्ति पूर्वक सिद्धकिया गया है कि आर्यसमाज वर्तमान राजनैतिक व राजविद्रोही प्रचारक सभा (सुसाइटी) नहीं है।

राजानं प्रथमंबन्दे ततोभार्यां ततो धनम्। राजन्यस्थति लोकेस्मिन् कुतोभार्या कुतोधनम् ॥ १ ॥ व्या०स्मृतिः ॥

जिसको

मुंशी द्वारिकाप्रसाद अत्तार

बाजार बहादुरगंज शाहजहांपुरने मुद्रित कराया।

प्रथमबार २००० | अक्टूबर सन् १९०९ ई० | मूल्य प्रति पु. ।)

Printed by G. N. Shukla at the Rambhooshan Press, Agra.

ग्रन्थविषयः

ओ३म्

भूमिका.

प्रियवरो ! आजकल थोड़े दिनों से भारतवर्ष में एक प्रकार का नवीन आन्दोलन अकस्मात् आ उपस्थित हुआ है, जिसकी वास्तविक दशा की व्यवस्था इस प्रकार है कि किन्हीं कारणों से बृटिश गवर्मेण्टने १९०५ ई० के अक्टूबर १६ तारीख को बङ्गाल प्रान्त दो भागों में विभाजित करदिया, जिससे साधारणतः प्रान्तीय सर्कार से लेकर राजराजेश्वर सप्तम एडवर्ड महाराज तक बंगाल के दो भाग न होने के लिये अतीव कातर स्वरसे पुकार मचाई जिस पुकार में साधारण बंगाली से लेकर "श्रीमान् राजा सरयोनिन्द्र मोहन टगोर" (ये महाशय अतीव वैभवशाली पुरुष हैं और राजा व प्रजा दोनों के कृपा व सन्मान के पात्र हैं) इत्यादि महानुभावों तक सम्मिलित रहे. परन्तु हाय ! बंगाली जाति की घोर पुकार अरण्य रुदनवत् होगई, अर्थात् इस कातर स्वर पुकार पर वास्तविक दशाके अन्वेषणार्थ किसी शासन कर्त्ताओं की रुचि न हुई, और न न्यायशीला गवर्मेण्ट भी इस पुकार पर किञ्चिन्मात्र ध्यान आकर्षित करसकी, तब बंगाल प्रान्तके नेतागण (Leaders) व नवयुवकों के अन्तःकरण में स्वदेशी देवी की पवित्र भक्ति स्मरण आगई, जिसका आवाहन बंदेमातरम् महामन्त्र से करके भारतवर्ष के कल्याणार्थ तन, मन, धन, से प्रथम समस्त बंगालीगण तैय्यार होगये, ईश्वरेच्छा या जो हो ! स्वदेशी का प्रभाव दिन दूना रात

चौगुना साहस के साथ दिन २ प्राबल्यता पर होताही गया, यहां तक कि भारत के सम्पूर्ण भागों में स्वदेशी २ की पुकार मचगई। और साथही स्वदेशी के सैकड़ों मिल, कल, और कारखानों की दिन २ उन्नति होनी आरम्भ होगई, प्रत्येक जाति व धर्म परस्परकी ईर्षा व द्वेष त्याग करके इसमें पूर्णतः योग देने के लिये कटिबद्ध होते गये, ऐक्यता व सौज्जन्यता का प्रादुर्भाव भारत में पुनः प्रतीत सा होने लगा और मातृभाषा का आदर करने में लोग अग्रसर होने लगे इत्यादि २॥

पाठको! मेरी रायमें तो भारत के हितसाधनार्थ कार्य्यवाही यहां तक कीगई, परन्तु आगे चलकर दुःख के साथ लिखना पड़ता है कि बीच में कुछ हमारे नवयुवक अर्द्धशिक्षित और अदूरदर्शी बंगालीगणने स्वदेशी प्रचारके बहाने से अंगरेज़ी शासकोंको चिढ़ाना आरम्भ करदिया, कहीं २ विदेशीय वस्तुओं को अपने २ घर से निकाल २ कर नष्ट भ्रष्ट करदेना और वस्त्रों को बिशेष मार्ग (Public Road) के ऊपर आग लगाकर आनन्द पूर्व्वक वन्देमातरम् की घोर गर्जना से हाट, बाट और बाज़ारों में नगरकीर्त्तन का जलूस निकालना और मार्ग में विदेशी वस्तुओं के ख़रीद फरोख्त करनेवाले पुरुषों को सदुपदेश के बदले निर्भयता पूर्व्वक मारपीट आरम्भ कर देना और वृटिश जाति व पुलीस कर्म्मचारियों को देखतेही विशेषतः वन्देमातरम् की घोर ध्वनिसे चिढ़ाने का प्रयत्न करना और कभी २ हाथ भी घाल देना इत्यादि २ अनाधिकार व अनुचित उपद्रव व व्यवहार करना अपना मुख्योद्देश्य समझ लिया, जिसके कारण "स्वदेशी व वन्देमातरम्" परमोपयोगी शुद्ध शब्दों को राजविद्रोहात्मक शब्द मान लियागया जो ऐसा उद्देश्य व उक्त उपयोगी शब्दों को राजविद्रोही शब्द मान लेना कदापि उचित न था। इधर उपरोक्त नियम बिरुद्ध अनाधिकार कार्य्यवाहियों के मिटाने के लिये हमारे ऐंगलोइण्डियन शासन कर्त्तागणने भी न्याय अन्यायके विचार को बिस्मरण करके उनसे भी अधिक उद्दण्डता व अनाधिकार रीति से काम लेना आरम्भ करदिया, जिसका परिणाम नादिरशाही के

समय का फुकरशाही समय स्मरण करादिया, और अन्तिम परि-णाम अद्यावधि उत्तम होने के बदले औरही भयंकर, विभीषिका का दृश्य सम्मुख खड़ा करदिया—**हे परम पिता परमात्मन्! शीघ्र भारतके कल्याणार्थ राजा व प्रजाके बीच की अविद्या व मतभेदको सत्यानाशकर, यही मेरी हार्दिक प्रार्थना है ॥**

यह तो होता ही रहा इधर बङ्ग भङ्ग का और स्वदेशी का प्रस्ताव १९०५ ई० काशीनगर के काङ्ग्रेस में सम्मिलित कियागया—स्वदेशी आन्दोलन ने तो कुछ २ शासन कर्त्ताओं के अन्तःकरण में अनाधिकार उद्दण्डता के कारण से उद्विग्नता उत्पन्न ही कर दी थी कि थोड़ेही समय में स्वदेशी का प्रबल हितेच्छु **बहिष्कार** का अवतार भारत संसार के भार उतार ने के लिये भारत भूमि में होगया—इस बहिष्कार (Boycott) ने वह प्रभाव जमाने में फली भूत हुआ कि जिस्के कारण गत दुर्गा पूजनोत्सव के समय कलकत्ते ही नगर में जहां कि प्रति वर्ष ८, ६ करोड़ के लगभग का कन्ट्रैक्ट (मांग) होता था वह अब केवल ५० लाख का माल विलायत से आया, जिससे समुद्रपार इंगलेण्ड व मैनचेष्टर आदि स्थानों के जुलाहे तथा अन्य व्योपारीगणों के चित्त में खलभली सी पड़गई, अब धीरे २ वह समय देखने में आया कि इस दीन हीन भारतीय प्रजाके आरतनाद को विद्रोहनाद मानकर उनकी अनुसुनी करके उल्टे उन्हीं की शि-कायतें जो शासकों द्वारा प्राप्त होती गई उस पर वहां के (इंगलेण्ड) सर जान **मार्ली** सरीखे तत्ववेत्ता उच्चाधिकारीगण कान लगाकर सुनने में दत्त चित्त होते गये। **अब भारतीय प्रजाकी ईश्वर ही रक्षा करे ॥** यही कारण था कि जिसका अनिष्टकारक फल श्रीमान् लोकमान्य लाला **लाजपतिराय** और सरदार **अजीत सिंह** सरीखे महानुभावगणों को देश निष्कासन स्वरूप में विशेष कष्ट सहनाही पड़ा ॥

१९०६ ई० की कलकत्ता कांगरेस में माननीय मि० दादाभाई नौरोजी ने एक मृगत्रैषिणक आशा स्वराज्य की बतलाकर बहिष्कार के साथ इसको भी कांगरेस में स्थान दिया, जिसका फल सूरत कांगरेस के प्रथमही अति भयंकर गृह विवाद के स्वरूप में उत्पन्न होगया। एक पक्ष नरमदल और दूसरा पक्ष गरमदल होकर दो भागों में बिभक्त होगया। जिसका मुख्य तात्पर्य्य यह है, जो लोग यह चाहते हैं कि हम जैसे बाइसबर्ष से कांगरेस द्वारा अपना स्वत्व सरकार से मांगा करते थे वैसेही अब भी मांगा करेंगे कभी न कभी तो सरकार देवैहीगी, आन्दोलन करना हमारा काम है, इत्यादि २ वे लोग "नरम दल" के नामसे प्रख्यात हुये, और द्वितीय नवीन दल का यह विचार है कि हम डेढ़ सौ वर्ष से स्वत्व मांगते २ थक गये परन्तु अभी तक हमको अयोग्य कहकर सरकार स्वत्व देने में टालमटूल करती है, इसलिये अब हमको योग्य व स्वावलम्बी बन स्वयं स्वत्व प्राप्त करना चाहिये, भीख मांगकर स्वत्व प्राप्त करना संसारके नियम बिरुद्ध है। अब आगे की आशा हमको नहीं है कि हम सरीखे अयोग्य पुरुष सर्कार की कोशिश से योग्य बन सकेंगे क्योंकि डेढ़ सौ वर्ष से सर्कार हमको अयोग्यही कहती चली आई है। परन्तु आजतक अयोग्य से योग्य बनाने में फलीभूत न हुई तो अब हमें स्वप्न में भी आशा नहीं है कि हम सर्कार की कोशिश से योग्य बन सकेंगे। हमको स्वयम् योग्य बनने का प्रयत्न करना चाहिये, जिसका साधन स्वदेशी, बहिष्कार, स्वराज्य और राष्ट्रीय शिक्षा है इत्यादि २ वे लोग "गरमदल" के नामसे पृथक् होगये॥

अब तक भारतवासी लोग जानते थे कि इन दोनों दलों में केवल मत भेद है परिणाम तो एकही है, परन्तु यह शुष्क आधुनिकराजनैतिक का अन्तिम परिणाम नहीं २ बल्कि अन्तिमसंस्कार ताप्ती सरिता पर हो गया। अर्थात् १९०७ ई० वाली सूरत की कांग्रेस में जो ऊधम व उपद्रव दोनों दलों के बीच में होगया है—वह किसी

समाचार पत्र पढ़ने वाले से छिपा नहीं है—जूते डंडे तक की नौबत आगई—ऐक्यता व सभ्यता इन दोनों का गला घोट कर तापती नदी में प्रवाह कर दीगई। शोक! शोक!! महा शोक!!! धिःक्कार है पाश्चिमात्य शिक्षा से शिक्षित राजनैतिक विचारोंको॥ हम थोड़ी देर के लिये मान भी लें कि मत भेद होने में अन्तिम से अन्तिम परिणाम अच्छाही होगा, तो क्या ईर्षा द्वेष संयुक्त मत भेद अच्छा कहा जासक्ता है, पाठको! कल्पना करो कि आज सर्कार ने तुम्हें तुम्हारा राज्य भारत वर्ष वापिस दे दिया तो क्या तुम उस का पूर्ण प्रबन्ध कर सकोगे, मैं तो कह सक्ता हूँ नहीं! नहीं!! कदापि नहीं!!! क्योंकि जब तुम अभी अपनी काङ्गरेस का नायक (President) चुनने में ईर्षा द्वेष पूर्व्वक जूता डण्डा तक की असभ्यता दिखलाकर सारे संसार में मुँह दिखाने के योग्य नहीं रहगये तो जब भारत वर्ष का राज्य पाकर उसके लिये महाराजा धिराज सम्राट चुनने का अवसर प्राप्त होगा और आपही सरीखे महानुभावगण चुनने के लिये तैय्यार होंगे तो मैं साहस पूर्व्वक कह सक्ता हूं कि उस समय में भारत में महाभारत का आदर्श हो जाने में कोई सन्देह नहीं रहेगा। यह सब आधुनिक आन्दोलन में आर्यसमाज कदापि योग देने में न कभी था, न है, और न रहेगा। क्योंकि श्रीमान् महाशय रामदेवजी B. A. हेडमास्टर गुरुकुल (कांगड़ी) हरिद्वार के कथनानुसार "वर्णाश्रम धर्म जिस समय पूर्व्व काल की नाईं भारतवर्ष में पूर्णतः प्रचारित हो जावेगा तो "स्वराज्य" क्या चक्रवर्त्ती राज्य भी प्राप्त होना सुलभ होगा" परन्तु कतिपय नीच, हठी, द्वेषी, और मलिनात्मा कुत्सित पुरुषों ने इधर उधर शासन कर्त्ताओं के कान भरना आरंभ कर दिया कि आर्य्यसमाज भी व० राजनैतिक तथा आधुनिक आन्दोलन कारियों का प्रबल सहकारी है। स्मरण होना चाहिये! कि आर्यसमाज का सिद्धांत राजनैतिक के विरुद्ध कदापि नहीं है, जैसा कि बहुतेरे हमारे सामान्य, अदूरदर्शी आर्य्यसमाइयों ने समाचार पत्रों में नहीं मालूम क्या

समझकर आन्दोलन करना आरम्भ कर दिया कि **आर्यसमाज राजनैतिक बिषयों से सम्बन्ध नहीं रखता**— परन्तु शोक ! कि क्या आर्यसमाज पर नहीं २ पवित्र वैदिक धर्म पर यह कालिमा नहीं कि "आर्यसमाज राजनैतिक विषयों से सम्बन्ध नहीं रखता" जब कि वेद सम्पूर्ण विद्याओं का भण्डार और आर्यसमाज का मूल तत्व पुनः राजनैतिक का आदि मूल कारण इत्यादि २ होते हुये राजनैतिक विषयों से पृथक् समझा जाय । यदि कहा जाय कि जब आर्यसमाज को राजनैतिक सिद्धांत आदरणीय है तो "**इन्डियन नेशनल काङ्गरेस**" से ही क्यों उपेक्षा करता है—**पाठक वर्गो !** इस का मूल कारण यह है कि आर्यसमाज उक्त महासभा (काङ्गरेस) अथवा आधुनिक आन्दोलन को वास्तविक शुद्ध राज नैतिक कहने व मानने के लिये तैय्यारही नहीं है, जो लोग हठ पूर्व्वक यही सिद्ध करना चाहैं कि आर्यसमाज के सिद्धान्तानुसार यही ब० राजनैतिक है—तो मैं साहस पूर्व्वक कह सक्ता हूं वे महाशय महर्षि **दयानन्द** का उद्देश्य तथा **सत्यार्थ प्रकाश** और आर्य समाज के पवित्र सिद्धान्तों के जानने में सर्व्वथा अनभिज्ञ हैं ।

एतदर्थ अब मैंने सम्पूर्ण आर्यसज्जनों और राज कर्म चारियों (सरकारी मुलाज़िम) की सेवा में निवेदन पूर्व्वक यह लघु पुस्तक (आर्यमुसाफ़िर मासिक पत्र के भाग ६ अंक १० से उद्धृत "**आर्य समाज की मुख़्तसिर तारीख़ और शोरिश सन्** १९०७ ई०" को उर्दू भाषा से देवनागरी भाषा में टूटे फूटे शब्दों सहित अधिकांश विषय अन्यत्र से ग्रहण करके अनुवादित किया है) जिस का नाम **आर्यसमाज गौरवादर्श** है—

*** अर्पण करता हूँ ***

आशा है कि ! पाठक वर्ग आदर पूर्व्वक मेरे इस टूटे फूटे

अनुवादित ग्रन्थ पर विशेष कृपा दृष्टि से अवलोकन करेंगे और अशुद्धियों पर हास्य न करके शुद्ध कर देने का कष्ट उठावेंगे ॥

॥ इत्योम्शम् ॥

स्थान—आर्यसमाज कटाँवाँ
ज़िला सुल्तानपुर—अवध
ता: २४ माघ १९६४ बिक्रम
(बसन्त पञ्चमी)

भवदीय.
रामहर्ष सिंह
(अनुवादक)

आर्य्यसमाज के नियम

१-सब सत्यविद्या और जो पदार्थविद्यासे जाने जाते हैं, उन सब का आदि मूल परमेश्वर है ॥

२-ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र, और सृष्टिकर्त्ता है उसीकी उपासना करना योग्य है ॥

३-वेद सत्यविद्याओं का पुस्तक है वेदका पढ़ना, पढ़ाना, सुनना और सुनाना आर्य्योंका परमधर्म है ॥

४-सत्य के ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिये ॥

५-सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये ॥

६-संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना ॥

७–सब से प्रीतिपूर्वक, धर्मानुसार, यथायोग्य बर्त्तना चाहिये ॥

८–अविद्या का नाश और विद्याकी वृद्धि करना चाहिये ॥

९–प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिये किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझना चाहिये ॥

१०–सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहियें और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें ॥

श्री स्वामीजीका मुख्य उद्देश्य ।

१–वेद वेदांगादि शास्त्रों का प्रकाश करना अर्थात् उनकी व्याख्या करना व कराना ॥

२–वेदोक्त धर्मका उपदेश लेख द्वारा करना व कराना ॥

३–आर्य्यावर्त्तीय अनाथ और दीन स्त्री, पुरुष, बालक, व बालिकाओं के रक्षण, पोषण आदि की सुशिक्षा करना कराना ॥ शम् ॥



* ओ३म् *

आर्यसमाज गौरवादर्श

आर्य्यसमाज का संक्षिप्त इतिहास

ओ३म् विश्वानिदेव सवितुर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रन्तन्न आसुव ॥ यजुः० ॥ ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

आर्यसमाजोत्पत्ति के कारण

सन् १८५७ ई० का ग़दर समाप्त हो चुका था, भारत वासी प्रजा अपने २ भाग्य का ठेका अंगरेज़ों के हाथ सौंप चुके थे, बृटिश राज्य का प्रताप सारे भारत वर्ष पर जाज्वल्यमान हो रहा था, और छःसौ वर्ष के घोर अन्याय से सताये हुये भारतीय प्रजा के अन्तःकरणों में आनन्दोल्लास का आभास पड़ने लग गया था, मत मतान्तरों की परतन्त्रता अब स्वतन्त्रता की गोद में क्रीड़ा करने लगी थी, पाश्चिमात्य शिक्षा का प्रकाश भारत में जगमगाने लगा, प्रकृत्योपासना (बुतपरस्ती) जो मुसलमानों के राज्याधिकार समय में बन्दप्राय होगई थी, फिर से मन्दिर, मठ और देवालयों में संख, घण्टा, घड़ियाल की घोर झनझनाहट ध्वनिकी प्रध्वनित दशों दिशाओं को परिपूर्ण करने लगी काशी, मथुरा और हरिद्वारादि तीर्थों पर ठसाठस मेलों का धूम धाम से जमाव होना आरम्भ होनेलगा, मक्का, मदीना के मार्ग खुलगये, हिन्दू और मुसलमानों ने परस्पर प्राचीन द्वेषाग्नि पूरित हृदयों में शीतल जलों से छींटामार २ के

मिलजुल के रहने लगे, ईसाईयों की" पिता पुत्र पवित्रायनमः,, की मधुर २ कोमल शब्दों की गुञ्जार और इङ्गलेंड की कोमलाङ्गी षोड़शा नव युवति सुन्दरी मिसों की मधुर २ मसीही गान पाश्चिमात्य विद्या के लोलुपजनों के चित्तों को आकर्षित करने लगी। यवन मतके प्रवाह से बचे खुचे शतशः महानुभाव कुलीन हिन्दू सन्तान सदा सर्व्वदा के लिये हिन्दू धर्म से घृणा करते हुये ईसाई मिशन के झंडे के तले आकर मसीहीगान के मधुर स्वर अलापने लगे, समयके फेर से बड़े २ उच्च घराने की बहू बेटियां निकल २ कर भंगी, चमार और चूहड़ों की सहधर्मणीयां होती हुई मसीही बलिदान के चौरा पर निछावरियां होने लगीं ! काशी के प्रसिद्ध विद्वान पं० नीलकण्ठजी शास्त्री और दिल्ली के सुविख्यात वेदान्ती पं० रामचन्द्रजी सरीखे महानुभावगण हिन्दूधर्म से तिलाञ्जुली देकर बायबिल के बिल में घुसने लगे, लक्षों बंगबासी जन ब्रह्मसमाज में प्रविष्ट होकर प्राचीन ऋषि महर्षि वशिष्ठ, गौतम, कपिल और कणादि को निरा मूर्ख व असभ्य आदि पदवियों से तिरस्कार करते हुये इंगलेण्डीय विद्वान् मि० हिस्कले, टिण्डल और ब्रेडला प्रभृति गौरांगों के अनुयायी होने लगे, पौराणिकीय कठोर शृङ्खला में जकड़ी हुई लक्षों विधवाओं के हाहाकार करुणापूरित घोर शब्दों से गगन मण्डल धुवांधार होनेलगा। " ओ३म् ब्रह्म " के स्थान पर अनीश्वरा बादके बाबा " स्वयम् ब्रह्म " का शासन स्थापित होने लगा। प्राकृति देवी पुजारियों के चित्तको आकर्षित करने लगी, संस्कृत निर्जीव भाषा (मुर्दा ज़बान) व वेदसंहिता बच्चों की बिलबिलाहट, ऋषि महर्षि बनचर व मन्दबुद्धि और संस्कृत साहित्य पुरानी रद्दी की ढेर समझी जानेलगी ॥

नवीनआन्दोलन का आभास

यह ऐतिहासिक विषय है कि जिन के प्रभाव से लक्षों हिन्दूगण यवन और कृश्चियन मतावलम्बी होने लगे, और इसी प्रकार छः सौ वर्ष के पूर्व्व ही की प्रचण्ड यवन कृपाण धारा जिस आर्य जाति और वेदों के महत्वता के नष्ट भ्रष्ट करने में तेज़ हो गई थी परन्तु थोड़े ही समय में विषय वासनाओं में

लित व भ्रष्ट शिक्षा के प्रसाद से लुप्त प्राय होने ही को थी—जब कि इतिहासवेत्ता आर्य जाति की प्राचीन रीति को देखकर उच्च स्वर से पुकार उठे कि भारत वर्ष में किसी नवीन आन्दोलन का समय आगया है, यह नवीन आन्दोलन क्या था कि—

नवीनआन्दोलन क्या था !

जिस समय मुम्बई प्रान्त में और युक्त प्रदेश के पवित्र रमणीक "बृजभूमि" में एक सम्प्रदाय के आचार्यों ने अपने अमानुषी, जघन्य, अश्लील, और कुत्सित व्यवहार और आचरणों से अपनी सम्प्रदाय को कलंकित करते हुये और अपने सीधे भोले भाले शिष्यों से विश्वासघात करते हुये नहीं नहीं हज़ारों उन सरल और मधुर स्वभाव वाली निष्कपट पवित्र कन्याओं को जिन्हों ने अपने पति के गृह का दर्शन तक भी न किया था, उन का पातिव्रत्य धर्म नष्ट करना आरम्भ कर दिया था, उसही समय में एक महर्षि परमेश्वर का प्यारा पुत्र अपनी माता की कोख में पल रहा था, जिस समय बंगाल की शिक्षित मण्डली में भी घोर अवैदिक कर्म्मों का प्रचार प्रवल वेगों के साथ हो रहा था, और वहां की उर्वरा भूमि और सघन सुन्दर बन और पवित्र नदियों का जल भयावनी कालीमाता की तृप्ति के निमित्त पशुओं के रुधिर से रक्तवर्ण होकर एक भयानक दृश्य दीख पड़ता था, और जगन्नाथ का मन्दिर समुद्र तट पर खड़ा हुआ उस के भी वेगों को तिरस्कार की दृष्टि से देखता हुआ अपनी अश्लील चित्र और छवियों से लोगों की आत्माओं को वाममार्ग का घृणित उपदेश दे रहा था, उसही समय में वहां की पिशाच सृष्टि को फिर से दैविक सृष्टि बनाने के निमित्त और राक्षस गृह से देव गृह बनाने के लिये और उस अपवित्र भूमि को ऋषि भूमि करने के लिये, एक बालक महात्मा अपने पिता के घर में शिक्षा पा रहा था— जिस समय कि मद्रास और अन्य प्रान्तों में झूठी २ नवीन गायत्री मन्त्रों की रचना करके अथवा सुन्दरी योरपियन रमणियों से चंचल मनों को मोहित करके, अकाल से पीड़ित वा पुराणों की भ्रष्ट कहानियों और उपदेशों से व्याकुल आत्माओं को पादरी लोग हिन्दूधर्म से छीनते चले जाते थे, उस ही

समय नर्व्वदा तट पर एक तपस्वी ब्राह्मण अपने पिता की बड़ी से बड़ी सम्पत्ति पर लात मारकर आत्मा की शान्ति के लिये इधर उधर भटक रहा था, जिस समय कि एक ओर बहुत से लोग मध्य और पश्चिमीय भारत में मुहम्मदी झण्डे के नीचे आ चुके थे, और पाश्चिमात्य विद्वानों की पदार्थ विद्या (SCIENCE) और विज्ञान, दर्शन (PHILOSOPHY) के सामने यहां के विद्वान् लोग सिर झुकाकर अनीश्वरवादी, प्रकृतिके उपासक मि० हिक्सले, टिण्डल और ब्रेडला के चेले बनते जाते थे उसी समय में हिमालय की कन्दरा में बैठा हुआ वा पर्वतके शिखर पर पद्मासन लगाये परमेश्वर के प्रेम और आराधन में मग्न गौतम और कपिल कणादि, पातञ्जलि और व्यास, वशिष्ठ, राम और कृष्ण, भीष्म और बिदुर जैसी आर्य सन्तान बनाने का उपाय सोच रहा था। जिस समय कि काशी की पण्डित सभा अभिमान के शिखर पर बैठी हुई "स्त्रीशूद्रौ नाधीयताम्" का उपदेश करती थी, और वेदों को एक मात्र अपनीही सम्पत्ति बना रक्खा था, और जिस समय कि वेदोंके नाम पर बड़े २ तीर्थस्थान व्यभिचार, मदिरापान के केन्द्रस्थान बने हुये थे, उसीही समय एक दण्डी सन्यासी एक अन्धे वृद्ध दण्डी सन्यासी के पास उन सब अत्याचारों को निर्मूल चकनाचूर करदेने के लिये और वेदों का प्रकाश करने के निमित्त वैदिकी शिक्षा पा रहा था- क्यों न हो! सृष्टि के पिता परमात्मा कब इस बातको देख सक्ते थे कि लोग उनके ज्ञानको भूल जायें और अधर्म मार्ग पर चलते रहें, यह उन्हीं की कृपा का फल है कि—

यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् भगवद्गीता

अर्थात् हे अर्जुन! जब जब धर्मकी हानि होती है तब २ अधर्म को जड़से उखाड़ने के लिये परमेश्वर मुक्तजीवों को उत्पन्न करता है इत्यादि इसीही नियम के आश्रय पर आर्यसमाज के स्थापक "मूल शंकर" से "महर्षि दयानन्द" होते हुये वेदों का प्रकाश हाथ में

लिये हुये आये जबकि चारोंओर अन्धकारही अन्धकार था, जिसकी पूर्णतः कार्य पर अन्तिमोद्देश्य सारे संसार को ज्ञात होगया कि वह आन्दोलन जिसका आभास इस प्रकार प्रख्यात होनेवाला था वह थोड़े दिनों के पश्चात् आर्यसमाज के स्वरूप में प्रगट होगया ॥

आर्यसमाजके प्रभाव पड़ने का संक्षिप्त कारण

इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं कि आर्यसमाज का प्रभाव भारतवर्ष पर विशेषतः पड़ने के कारण ये हैं (१) न्यायशीला बृटिश गवर्नमेन्टकी शासन प्रणाली (२) पौराणिक विज्ञान जब भारतवासियों को व्यभिचारी, मद्य, मांसाहारी और प्रकृत्योपासक इत्यादि दुर्गुण साधारण रीति पर और मुहम्मदी व ईसाई विज्ञान इन्द्रियारामी, मृतकजनोपासक, कामी और मद्यपी विशेष रीति पर बनादिया था। हां किञ्चिन्मात्र उस समय पाश्चिमात्य विज्ञान ने इनमें कतिपय दुर्गुणों को भारतवर्षीय जनों के मस्तिष्कसे निकाल दिया परन्तु फिर भी इस अधूरे विज्ञान ने सत्य मार्ग से सर्वथा विमुखही करा दिया "एक तो कडुवा करैला दूसरे नीम चढ़ा" अर्थात् आरम्भिक सृष्टि का मूल नहीं २ बल्कि एक प्रकार से इस संसार का स्मारक चिन्हही मिटा दिया क्योंकि उनके कथनानुसार सृष्टिका आरम्भ केवल ५ हजारही वर्ष का समय हुआ और ईश्वरीय सत्ता से सर्वथा अस्वीकार है इत्यादि २— तब महर्षि दयानन्दने उक्त थोथले वैज्ञानिकों के विचार पर निर्भय, गम्भीरता पूर्वक समालोचना करनी आरम्भ करदी। और ऋषि सन्तानों को बतला दिया कि सृष्टि के आरम्भ का समय १ अर्ब ९६ कोटि वर्ष व्यतीत हुआ और पूर्ण विश्वास दिला दिया कि सत्यमार्ग वेदोक्त धर्म है ॥

बृटिशराज्यवआर्यसमाजकासम्बन्ध

प्रायः कहा जाता है कि बृटिश शासन ही के शान्ति प्रभाव से आर्य्यसमाज की उन्नति नहीं बल्कि उत्पत्ति का होना सर्व्वथा निर्भर है, परन्तु यह बात सर्वथा न्याय शून्य असंगत है, क्योंकि भारतवर्ष के अतिरिक्त अमेरिका, अस्ट्रेलिया, अफ्रीका, और कनाडा इत्यादि में भी जहां कहीं कि बृटिश शान्ति

मई राज्य है तो क्या वहां इस प्रकार कोई सभा, समाज (Society) धार्मिक स्थापित हुई है ? कदापि नहीं ! परन्तु साथ ही स्मरण रखना चाहिये स्थापित हो कैसे जब कि अमेरिका इत्यादि देशों से और आर्य्यावर्त्त से पृथ्वी आकाश का सा अन्तर है। आर्य्यावर्त्त माननीय सृष्टि के आदि मूल से ही अस्तित्व दशा में है, जब कि अन्य देशों में पशु पक्षियों तक का चिन्ह मात्र भी न था, और परम पिता जगदीश्वर ने यदि निज धरोहर ज्ञान निधि (वेद) सौंपा था तो आर्य्यावर्त्त के निवासियों ही आर्यजाति को ! हां इस में सन्देह नहीं कि आर्य्यजाति ने इस अपूर्व धरोहर को कतिपय समयों में विस्मरण सा कर दिया था और कतिपय समयों में मतमतान्तरों की घनघोर घटा इस पर आच्छादित हो चुकी थी परन्तु यह कब सम्भव था कि आर्य्यजाति ऋषि सन्तान इस ईश्वर दत्तक अपूर्व निधि को सर्वथा विस्मरण ही कर देते अथवा इस अमूल्य रत्न को निष्प्रयोजन ही समझ लेते। अतिरिक्त इसके इतिहास भी बतलाता है कि जब आर्य्यजाति निर्बल से निर्बल हो जाने पर भी और प्रत्येक समय पचण्ड यवन कृपाण धारा गर्दन पर प्रहार होने पर भी और विषय वासनाओं में लिप्त हो जाने पर भी परमात्मा की अपूर्व धरोहर की रक्षा में आलस्य, प्रमाद से काम नहीं लिया। तो फिर यह कैसे सम्भव था कि परमात्मा आर्य्यजाति को विस्मर्ण करके अपनी धरोहर अन्य जाति को सौंप देता, एतदर्थ न्यायानुसार अपने अमानतदारों (आर्यजाति) को वास्तविक दशा में होने ही के लिये सन् १८५७ ई० के पश्चात् बृटिश न्याय शासन के अधिकार में विश्राम दिया। और आत्मिक उन्नति के लिये एक ऐसी आत्मा को भेजा जिस ने निष्पक्ष होकर वेदों की शिक्षा के प्रचार में आत्म समर्पण करदिया जिसका पवित्र नाम **दयानन्द** था। उस समय बृटिश शान्ति शासन के प्रभाव से चारों ओर राम—राज्य के समय सा प्रतीत हो रहा था, लोग आर्यसमाज में आनन्द पूर्वक वृन्द के वृन्द सम्मिलित हो रहे थे, और पुरानी, किरानी, कुरानी और जैनी इत्यादि मतावलम्बी हैरान हो रहे थे कि "ऐं" यह क्या हो गया ? पौराणिकों के मनही मन में सन्देह हो रहा था कि हमारे बम्बभोले का घोर शब्द और

मन्दिरों में घण्टा, घड़ियालों की झनझनाहट क्यों मन्द पड़ गई। और ये हमारे ही में से "ओ३म्" की ललित गुन्जायमान शब्द कहां से आ रहा है। मुहम्मदी भाइयों का ख्याल चक्कर में पड़ गया कि छः सौ वर्ष तक जिस काफ़िर क़ौम पर मुहम्मदी शमशेर (तलवार) चलाते २ थक गये थे, और अब भी शान्ति समय में कुछ न कुछ " अल्लाह व अकबर " की सदा ही सिखाते रहे परन्तु हाय ! खुदाकी ग़ज़ब यह वेद वेदकी नवेद कहां से और क्यों कर आपहुंची कि जिसनें मेरे इस शिकार को हमसे सर्व्वदा ही के लिये पृथक् कर दिया और लेने के देने पड़ रहे हैं, ईसाई सोचते थे कि मसीही भेड़ों का ग़ल्ला तो कुछ कमही नहुआ यह अपरचयी हिन्दी भेड़ें ओ३म्-ओ३म् मिमियाती हुई कहां से आगई ! सबसे विशेष चिन्ता जैनियों के चित्त में उत्पन्न हुई कि "पें"यह क्या विचित्र लीला है कि हमारे धर्म ग्रंथों को अन्यमता-वलम्बी दर्शन तक नहीं कर सक्ते थे तो क्यों कर मेरी पोल की ढोल सुनाई देरही है। यहांतक कि पश्चिमीय वैज्ञानिकों का मस्तक घूमगया कि जिस वेदों को हम लोग सैकड़ों वर्ष से बच्चों की बिल-बिलाहट और बनचर मन्दबुद्धियों की रचना कीहुई बतलाते थे वही वेद शास्त्रों में यह कहां से सारी विद्याओं का भंडार निकल पड़ा इत्यादि २ चमत्कृत्यों को प्रकाश करते हुये महर्षिदयानन्दने घोर निद्रा में सोते हुये भारत वासियों को वैदिक विज्ञान को उत्तेजित करके गम्भीर वाणी से जगा दिया-वैदिक विज्ञान से लाभ उठाने के निमित्त महर्षि निज कार्य्य (MISSION) आर्यसमाजों के सुपुर्द करके भारतही नहीं वरन सारे संसार के कल्याणार्थ वैदिक धर्म पर बलिदान होता हुआ ता० ३० अक्टूबर १८८३ ई० तथा कार्तिक के अमावास्या दीपा वली के दिन इस असार संसार से सदाके लिये विदा होगया। उन का कार्य (MISSION) क्या था उनके दानपत्र (वसीयतनामा) जो " श्रीमती परोपकारणी सभा अजमेर " का उद्देश्य है वही उन का मुख्य उद्देश्य था—जिसका विवरण इसप्रकार है॥

(१) वेद वेदांगादि शास्त्रों का प्रकाश करना अर्थात् उनकी व्याख्या करना व कराना॥

(२) वेदोक्त धर्मका उपदेश लेख द्वारा करना, कराना ॥

(३) आर्यावर्तीय अनाथ और दीन स्त्री, पुरुष, बालक और बालिकाओं के रक्षण पोषण आदिकी सुशिक्षा करना, कराना ॥

परन्तु हाय ! स्वार्थपन और चाटुताबाद.

आर्यसमाजके नेताओं की निर्बलता

महर्षि के पश्चात् वैदिक विज्ञान और वेदांगों से अपरचित लोगों के चित्त में वेदों की वास्तविक प्रीति तो होही नहीं सक्ती थी, पश्चिमीय शिक्षा के प्रभाव से चौंधियाये हुये कतिपय अंगरेज़ी शिक्षित जो महर्षि के उपदेश द्वारा कुछ सुधार पर होने से समाज में प्रविष्ट हो चुके थे । अब उन्होंने सोचा कि बिना पश्चिमीय शिक्षा (अंगरेज़ी भाषा) से शिक्षित हुये हम लोग अपने शाशन कर्त्ताओं (हुक्कामों) के साथ कैसे सम्मिलित होसकेंगे, अतएव इस सिद्धान्तको सन्मुख करके आर्यसमाज के नेता (LEADERS) जो पहिले ही से अंगरेज़ी भाषा के प्रबल स्नेही थे उन्हों ने अतीव गंभीर भाव से आर्यसमाज के सञ्चालन का भार अपने सिर पर लेकर "दयानन्द एंग्लो वैदिक–कालिज" स्थापित कर दिया कि जिसमें ऋग्वेदीय संकालित पुस्तक को सायणभाष्य और उपनिषद् शंकरभाष्य के अनुसार शिक्षा दी जाती है जो दयानन्द कालिज के छात्रगण वेदानुयायी होने के बदले वेद विरुद्ध नास्तिक हो जाने की सम्भावना है, ऐसा क्यों ! जिसमें बृटिश विश्वविद्यालय (UNIVERISITY.) में सम्मिलित होने का सौभाग्य प्राप्त होता कि छात्रगण प्रमाण पत्र पाने पर सरकारी नौकरी प्राप्त कर सकें इत्यादि । कतिपय सभासद जिन को महर्षि की शिक्षा का वास्तविक प्रभाव पड़ गया था, जिन की दृष्टि में वेदों की महत्वता आगई थी, और उन को पाश्चिमात्य शिक्षा वालों ने हताश करके अस्तव्यस्त कर डाला था, शोक ! कि आर्य समाज के उस समय के अपरिचित नेतागण अल्पकालिक प्रशंसा और मृगतृष्णिक आशायें होने पर भी सम्भव था कि अपनी वीरता

व उद्योग से सम्भल जाते, परन्तु नहीं वह स्वयं निर्बल थे क्योंकर सम्भल सक्ते थे, और पश्चिमीय शिक्षा ने उन के मस्तिष्क में पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया था यह उन के विचार ही में न आ सक्ता था कि वेद वेदाङ्गों की शिक्षा से संसार को कुछ लाभ हो सक्ता है या नहीं।

इसनिर्वलताकाफल औरआर्यसमाजपर प्रथम आपत्ति.

अपने नेताओं की निर्बलता का फल आर्य्यसमाज को शीघ्र ही उठाना पड़ा अर्थात् भयानक गृह विवाद (घरेलू लड़ाई) आरम्भ हो गई, जो लोग आर्यसमाज में केवल वैदिक विज्ञान के प्रेमी होकर प्रविष्ट हुये थे वे एक दल "**महात्मापार्टी**" में और शेष पश्चिमीय शिक्षा के प्रेमीजन द्वितीयदल "**कलचर्डपार्टी**" में सम्मिलित हो गये। द्वितीय दल में मांस भक्षण के वादानुवाद का विचार लाला मूलराज जी एम. ए. एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर की मलिनात्मा के प्रसाद से आरम्भ हुआ, त्राहिमाम् २ जिस के कारण आर्यसमाज को वह अधोगति का समय देखना पड़ा कि जिस अधोगति का धक्का असाध्य नहीं तो दुसाध्य अवश्य है, और द्वितीय दल की भीतरी लीला प्रकट होने पर आर्यपबलिक उन से सर्वदा के लिये विमुख हो गई "दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज" की प्रबन्ध कर्तृ समिति (MANAGING COMMITTEE) प्रथम ही से प्रथक् जान बूझकर बनाई गई थी, इसलिये उस को आर्यसमाजों से सरलता पूर्वक प्रथक् कर लिया गया। इस गृह विवाद में आर्य समाज अपनी अस्तित्व तो अवश्य ही स्थिति रख सका, परन्तु शोक ! कि दो प्रथम कक्षा के उच्च नेता (GENERAL LEADERS) जो वेदों के परम भक्त थे इसके प्रभाव से प्रथक् हो गये अर्थात् श्री मान् लाला हंसराज जी बी. ए. अवैतनिक प्रिन्सपल दयानन्द एंग्लो वैदिक कालिज लाहौर और सुप्रसिद्ध श्री मान् लाला लाजपतिराय जी— इन के अतिरिक्त और भी थोड़े उच्च नेता यथा श्री मान् ला० लालचन्द एम. ए. स्थापक दयानन्द ऐंग्लो

वैदिक कालिज व लाला मूलराज जी एम. ए. एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर व राय नारायण दास जी एम. ए. व लाला ईश्वरदास एम. ए. व लाला द्वारिकादास एम. ए. प्लीडर चीफ़ कोर्ट लाहौर इत्यादि २ की भी वियोग का कठिन दुःख उठाना पड़ा— उपरोक्त दो महानुभावों के कार्य्य का ढंग प्रथक् हो जाने से आर्य्यसमाज दुःसाध्य रोगों से पीड़ित हो रहा था, परन्तु परमात्मा के असीम अनुग्रह से श्री मान् महात्मा मुंशीराम जी (वर्त्तमान मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी—हरिद्वार) इन दुःसाध्य रोगों को नष्ट करने के लिये महर्षि धन्वंतरि जी के सदृश प्राप्त हो गये, और उन के अनुयायी श्री मान् रायपेड़ाराम जी व राय ठाकुरदत्त धवन एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर, डाक्टर परमानन्द जी एम. ए. राय लब्धाराम जी बी. ए. मलिक ज्वालासहाय जी व मि० रौशनलाल जी बी. ए. बैरिस्टर पटला व पं० रामभजदत्तजी बी. ए. प्लीडर चीफ़ कोर्ट लाहौर व लाला रामकृष्ण जी बी. ए. प्लीडर इत्यादि २ हुये जिन्हों ने आत्म सम्मर्पण करके गम्भीर भाव से महात्मा मुंशीराम जी के महोपकारी धर्म कार्य्यों में हाथ बटाया। गृह विवाद सम्बन्धी झगड़ों को सर्वदा के लिये सम्बन्ध तोड़ दिया. अर्थात् "वेद प्रचार फण्ड" स्थापित करके अपनी तीक्ष्ण बुद्धि का चमत्कार्य दिखला दिया, और सिद्ध कर दिया कि आर्य्य पवलिक भूतपूर्व नेताओं से साधारण सम्बन्ध रखकर उन पर पूर्ण विश्वास कर सक्ती है।

आर्यसमाज पर द्वितीय आपत्ति

वेद प्रचारक फण्ड के स्थापित होते ही उपदेशकों की संख्या बढ़ाई गई, और उपदेशक लोग भी सुभीते और प्रबल उत्तेजना के साथ वैदिक धर्म के प्रचारार्थ कटिवद्ध हो गये, दिन दूने रात चौगुने साहस से पुनः कार्य्य आरम्भ हुआ। और भयभीत पुरानी, किरानी, कुरानी, आदि नेतागणों के बदन फिर से मलीन होने लगे जो कुछ समय गृह विवाद के कारण प्रफुल्ल बदन हो कर आर्यसमाज पर हास्य दृष्टि से देखते रहे, मुहम्मदी शेषनाग (अजदहा) को असंख्य देशों और जातिओं को एक

फुङ्कार में भस्म कर देने का तो स्वभाव ही था, आर्य्यों को पुनः सम्भल कर काम करते देख अत्यन्त कोपानल में स्वयम् ही भस्म होने लगा, मुहम्मदी नेतागण जो वाचिक, लेखिक शास्त्रार्थ द्वारा प्रथमही पराजय को प्राप्त हो चुके थे अब इसके अतिरिक्त उनको और कोई उपायही न सूझपड़ा कि न्यायालय में जाकर क़ानूनी बर्त्ताव करें इसलिये प्रथम "बिसमिल्लाह" उन्होंने दिल्ली न्यायालय में कि, जहां से पराजित होने पर मुहम्मदी भाई अत्यन्त क्रोधातुर होगये, और मिर्ज़ा गुलाम अहमद क़ादियानी ने इस क्रोधाग्नि में और ईंधन लगाया, श्रीमान् धर्मवीर पं० लेखराम जी आर्य पथिकके विरुद्ध उनकी मृत्यु सम्बन्धी भविष्यद्वाणियां आरम्भ होने लगीं, और अन्त में उनकी मन्त्रणाकी कुचाल से ता० ६ मार्च १८९७ ई० ईदके दिन एक निर्बलात्मा, दुष्ट, पापी मुसलमान ने धोखे से उस पुरुषसिंह धर्मबीर पं० लेखराम को सर्वदा के लिये आर्यसमाज से पृथक् कर दिया, धर्मवीर की मृत्यु से आर्यसमाजको एक महाभीषण आपत्ति का सामना करना पड़ा, सम्भव था कि उपदेशकों और व्याख्याताओं को अवश्यही निर्बल और भयभीत बना देता—जबकि आर्यपवलिक और नेतागण इसप्रकार दृढ़ चित्त और धर्मपर बलिदान के पूर्णतः आदरणीय न होते- श्रीमान् लाला हंसराजजी बी. ए. व उनके दक्षिण भुजा ला० लाजपतिरायने भी उस समय आर्यसमाजियों के कार्य में पूर्ण सहायता प्रदान की और संसार को दिखला दिया कि समय पर दोनों दल एक हो सक्ते हैं, और थोड़े काल तक परस्पर मिलजुल कररहे, परन्तु उनके कार्य का नियम सर्वथा समाज के नियमों से विरुद्ध था, इसलिये बहुत समय तक मिलजुल कर न रह सके तथापि राय ठाकुरदत्त धवनकी दूरदर्शिता, बिशाल बुद्धिमतासे और महात्मा मुंशीरामजी की प्रधानता में आर्यसमाज ज्यों त्यों करके पुनः वास्तविक दशा में सम्भल आया और पूर्ण बल पूर्वक वैदिक धर्म के प्रचार में लगगया और बिश्वास पूर्वक कहा जा सक्ता है कि यह आपत्ति आर्यसमाज में नवीन आत्मिक बल प्रवेश होने का कारण हुई ॥

यह भी कह चुका हूं कि आर्यसमाज के द्वेषी जनोंने शास्त्रार्थ से

नवीन तृतीय आपत्ति का आरम्भ

पराजय प्राप्त होने पर बिह्वल होकर अब क़ानूनी बर्त्ताव आरम्भ कर दिया, जिसका प्रथम बर्त्ताव दिल्ली में किया गया, यह अभियोग मुहम्मदियों की ओर से पं० लेख रामजी के बिरुद्ध था, जिसमें आर्योंहीं को बिजय प्राप्त हुआ, इसी के अनुसार एक अभियोग पञ्जाब पौराणिकों के नेता व वर्त्तमान महामन्त्री " श्री भारतधर्म महामण्डल " पं० गोपीनाथ की ओर से आर्यभूषण महात्मा मुंशीरामजी के बिरुद्ध उपस्थित कियागया था परन्तु उस (गोपीनाथ) ने भी अन्त में हारखाई, तत्पश्चात् आला-राम साधुने जो हिन्दू धर्म सभाओं की ओर से व्याख्यान दिया करता था, आर्यसमाजों के बिरुद्ध लोगों को भड़काना आरम्भ कर दिया, और थोड़े मूल्यवाली छोटी २ पुस्तकें (TRACTS. Pamphlets.) इस प्रकार के प्रकाशित कराये कि जिसमें आर्यों को अश्लीलसे अश्लील शब्दों में कुबाच्य कहा और इसके अतिरिक्त आर्यों को राजबिद्रोही सिद्ध करनेकी चेष्टा की, परन्तु पुलिस की रिपोर्ट पर मजिस्ट्रेट ज़िलाने १५३ (अ) धाराके अनुसार आलाराम पर अभियोग चलाया और उचित दण्ड दिया। हमारे पौराणिक भाइयों ने अपने पुराने पड़ोसी मुहम्मदी भाइयों के अनुकरण में केवल अभियोग ही में साथ नहीं दिया बल्कि पं० तुलसीरामजी स्टेशन मास्टर फरीदपुर को बध करके दिखला दिया कि समय पड़ने पर पौराणिक भाई भी इस निशाचरी कर्म से घृणा नहीं करसक्ते। एवम् मुहम्मदी घृणित कर्मों का प्रभाव पौराणिकों पर अपना पूर्ण अधि-कार करचुकी है। रहे जैनी, सिख, ईसाई इन्होंने केवल अभियोगही में मुहम्मदियों का साथ दिया है, जिसके लिये अभियोग दिल्ली जैनियों का पं० शम्भुदत्तजी उपदेशक श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा पञ्जाब के बिरुद्ध और अभियोग कर्नाल ईसाइयों की ओर से कति-पय सभासद आर्यसमाज कर्नाल के बिरुद्ध, और ततखालिसा की ओर से रोपड़ आदि आर्यों के बिरुद्ध इत्यादि २ का पर्याप्त प्रमाण है। आर्यसमाज पर तो उपरोक्त आपत्तियां अपनी कृपा दृष्टि कियेही

थी, अभाग्यवशात् आर्यावर्त्त पर इसी समय अकाल महा विकराल स्वरूप धारण करके अनेक नर नारियों को काल के गाल में डाल रहा था। हज़ारों हिन्दू अनाथ बच्चे सड़कों पर पड़े हुये मारे क्षुधा के अल्प कालिक जीवन की आशा सिसक २ कर जोह रहे थे, बड़े२ उच्च घरानों के नन्हे २ सुकुमार बालक, बालिकायें क्षुधातुर हो हो कर घोड़ों की लीदके दाने और कैसे गिरी हुई रोटियों के टुकड़े ले लेकर जीवन व्यतीत कर रहे थे। उस समय एक ओर इस देशके श्रीमान्, सेठ, साहूकार और राजा महाराजा अपनी हवेली में गाव तुम तकिये के सहारे अंगड़ाइयां ले ले कर हैदरी, ज़हूरन के नृत्य गानके प्रेम में छकित होरहे थे। और दूसरी ओर इन्हीं नन्हे २ दुध मुहें बालक बालिकाओं को मसीही दल अपने शरणमें लानेका प्रयत्न कर रहे थे। परन्तु शाबाश दयानन्द के प्यारे आर्य पुरुषों को! कि जिन्होंने ठीक समय पर अपनी अपूर्व उदारता व साहस का पूर्ण परिचय देकर लगभग २४०० अनाथ बालक, बालिकाओं को कराल काल के गाल से निकालही लिया। इधर कांगड़ा के विख्यात भूँचाल ने भी अपनी घृणित कुचालकी वह भयंकर बिभीषिका का कमाल दिखलाया कि जिसको समाचार पत्रों के पाठकों को भलीभांति विदितही होगा। इस समय में भी वैदिक धर्म सेवी आर्य पुरुषों को इस परोपकार रूपी बृहत यज्ञमें भाग लेनेको आनाही पड़ा, जिसमें वह कार्यवाही योग्यता पूर्वक दिखलाई कि जिसकी प्रसंशा स्वयम् पंजाबके श्रीमान् जनाब नव्वाब लेफटेण्ट गवर्नर साहेब बहादुर श्रीमुख से की है। यही दोनों उपकार का समय है कि जिसके पूर्णतः सिद्ध होजाने पर श्रीमान् लाला लाजपतिराय जी जगत प्रसिद्ध भारतनेता (INDIAN. LEADER) समझे गये, इधर इनके अतिरिक्त अन्य आर्य नेताओं का भी अकथनीय, अवि-श्रान्त परिश्रम व उद्योगने उनकी महत्वता सर्वसाधारण में विशेष रूपसे प्रकाशित करदी, परन्तु मन्दबुद्धि, मलिनात्मा, द्वेषी, दुरा-ग्रही जनों का अन्तःकरण क्रोधानल में दग्धही होता गया, क्या कर

सक्ते थे ! हां सिवाय इसके कि आर्यों के विषय में राजविद्रोहका अभिशाप आरोपण करने का प्रयत्न करें ।

आर्यसमाजकी तृतीय आपत्ति

आर्यसमाज अपने छठें नियम के गौरवाभिमान में इस विषय पर लेशमात्र भी ध्यान आकर्षित न करसका कि जिस काम को हम समस्त संसार के उपकारार्थ कर रहे हैं वह वास्तव में हमारे लिये दुखदायक सिद्ध होवैगा और इस शुभ कार्य के बदले हमारे शिर पर वर्त्तमान राजनैतिक (Present Political) दल नहीं नहीं बल्कि राजविद्रोही होने का अभिशाप लगाकर राजविद्रोह का मुकुट बांधने का प्रयत्न किया जावैगा। यह तो अवश्य है कि पवलिक (Public) निस्संदेह दूरदर्शिता नहीं होती परन्तु आश्चर्य है कि आर्यसमाज के कार्य्यकर्त्ता नेताओं में भी सिवाय महात्मा मुंशीराम जी के इस का गुप्त भेद और कोई न जान सका, और इस प्रकार अकेले दूरदर्शी महात्मा की तीक्ष्ण दृष्टियों ने निस्सन्देह आगत आपत्तियों को ताड़ लिया था (इस विषय की साक्षी उस समय के "सत्य धर्म प्रचारक" के पिछले अंकों में पर्याप्त है) जिसके रोकने के लिये उन्हों ने कोई प्रयत्न उठा नहीं रक्खा है, परन्तु महात्मा जी को नवीन गृह विवाद से ही पूर्ण अवकाश न प्राप्त होने पर पश्चात् कुछ इस आवश्यकीय कार्य्यों में मन्दता करनी पड़ी, यह महात्मा दल के गृह विवाद की अशुभ बाणी श्रवण गोचर न होती यदि श्री मान् राय ठाकुरदत्त जी धवन एक्स्ट्रा असिस्टेण्ट कमिश्नर जैसा प्रबन्ध कर्त्ता, विश्वासपात्र और दूरदर्शी अचानक कर्नाल से सीमाप्रान्त के जिलों में न चला जाता, क्योंकि कर्नाल में रहते हुये उस महात्मा की राय किसी एक या दूसरे की ओर झुकी हुई नहीं प्रकट होती थी, नहीं २ कुछ हम भूलते हैं ! इसके अतिरिक्त इस नवीन गृह विवाद के सामान चिर-काल से एकत्रित हो गये थे, क्योंकि कलचर्ड पार्टी के वियोगावस्था में अभाग्य से पश्चिमीय शिक्षा का कुछ न कुछ लेसमात्र महात्मा पार्टी में भी शेष रह गया था, जिस प्रकार कि महात्मा व कलचर्ड पार्टियों के पृथक होने के कारणों का गूढ़ विषय स्वर्गवासी श्री मान्

लाला साईंदास जी एम. ए. मन्त्री आर्यसमाज लाहौर दवाये जा रहे थे, उसी प्रकार अब भी राय पैड़ाराम जी का गम्भीर भाव गूढ़ विषयों को दवाये जा रहा था, अन्त में पहिले की नाईं यह नष्ट बुद्धि का फल भी उसी प्रकार फूट कर निकला, परन्तु बहुत ही असमय में निकला, इस गृह विवाद में सब से बड़ी भारी हानि जो आर्यसमाज को पहुंचाई गई वह यह है कि महात्मा मुंशीराम जी को कई एक वार गुरुकुल के मुख्याधिष्ठाता पद पर से इस्तीफा देना पड़ा और गुरुकुल सम्बन्धी द्रव्य के आय व्यय में हानि का अभिशाप लगाया गया। जिसके कारण महात्मा जी का ध्यान विरोधियों की ओर से हटकर अपनी निर्दोषता सिद्ध करने में लग गया। इधर उत्तम अवसर तथा खाली मैदान पाकर विरोधी जन वृटिश गवर्नमेण्ट को इस विषय का विश्वास जमाने में फली भूत हो गये कि आर्यसमाज राजनैतिक दल (Political Body) नहीं २ बल्कि राजविद्रोहियों का दल है उस समय सम्भव था कि आर्य समाज का द्वितीय दल (कलचर्ड पार्टी) जो पश्चिमीय शिक्षा से गर्वित हो कर शासन कर्त्ताओं (हुक्कामों) के सहयोगी होने का सौभाग्य भी प्राप्त कर चुका था, इस घृणित कार्य्यवाहियों से गवर्नमेण्ट सर्कार को भली प्रकार समझा बुझा कर सचेत कर देता, अथवा लाला हंसराज जी का प्रभाव शाली आन्दोलन आर्यसमाज के नेताओं को ही सचेत कर देता परन्तु—

का वर्षा जब कृषी सुखाने। समय चूकि पुनि का पछिताने॥

के अनुसार ठीक ऐसे समयमें जबकि शाशनकर्ता दल अर्थात् "**कन्सर्वेटिव पार्टी**" के शाशन का सिकञ्जा ढीला हुआ और "**लिबरल पार्टी** के शाशन रूपी भुवनभास्कर भारतरूपी आकाशमण्डल में प्रादुर्भाव होता भया, भारतजातीय महासभा अर्थात् " इन्डियन नेशनल कांगरेस " के नेताओं की मृगतृष्णा सदृश आशायें उत्पन्न होने लगी, उसीही बीचमें बंग का अंग भंग कियागया, और ला० लाजपतिराय जो प्रथमही से उक्त कांगरेस में

प्रसिद्ध नेताओं की गणना में होचुके थे १९०५ ई० में मि० गोखले महोदय सहित इङ्गलेण्ड को सिधार गये। इधर बंगाली बाबुओं ने बंग भंग होने के कारण विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार और स्वदेशी आन्दोलन का कठोर प्रण धारण करलिया, जिसका प्रभाव भारत वर्ष के एक ओर से लेकर दूसरी छोर तक गंभीर भावसे आच्छादित होगया, यही सब कारण था कि जिससे लाला हंसराजजी का भी मस्तिष्क घूम गया, क्योंकि उन के प्रायः प्रख्यात २ धर्म वीर नेता "इन्डियन नेशनल काङ्गरेस" द्वारा उस समय उन की सीमा से निकाले जाते थे जिस कारण वह अवस हो रहे थे। हाय! विशेष पश्चिमीय शिक्षा मनुष्य को वर्त्तमान राजनैतिक में फसाये बिना रह ही नहीं सक्ती॥

आर्यसमाज की चतुर्थ आपत्ति

यह अभी बताया जा चुका है कि महात्मा दल तो गृह विवाद सम्मन्धी झंझटों में तत्पर था और द्वितीय दल के प्रायः विश्वासपात्र नेता उन की सीमा से बाहर किये जा रहे थे जिसके प्रमाण में "इंडियन नेशनल कांग्रेस" की साखा "पञ्जाब ऐसोशियन" के प्रसिद्ध कार्य्यकर्त्ता मि० एस, एस. भाटिया (Mr. S. S. Bhatia) की उस निर्भयता से लिखी हुई चिट्ठी की ओर ध्यान आकर्षित कर देना पर्याप्त है, जो महात्मा मुंशीरामजी के किसी २ लेख का उत्तर समाचारपत्रों में छपा था उस में मि० भाटिया ने अतीव चित्तभेदक और प्रभावशाली शब्दों में कहा था कि "शोक! कि आर्यसमाज ने पूर्ण देश हितैषियों और आत्म सम्मर्पण कर्त्ताओं को अपनी लघुसीमा के भीतर लाकर देश सेवा रूपी महान यज्ञ से सर्वथा बञ्चितकर दिया है" यद्यपि उक्त मि० भाटिया का वचन स्पष्ट शब्दों में इस विषय का पूर्ण साक्षी दे रहा है कि वर्त्तमान राजनैतिक नेतागण भी आर्यसमाज को अपने अभिप्रायों के विरुद्ध समझते हैं, परन्तु साथ ही मि० भाटिया के वचनों से यह भी सिद्ध होता है कि वे लोग चाहते हैं कि आर्यसमाज भी हमारी हां में हां मिलाना आरम्भ करै—शोक! कि उनकी अभिलाषा किसी अंश में पूर्ण भी हो गई, अर्थात् इङ्गलेण्ड से पुनः भारत में

शुभागमन करते ही श्रीमान् ला० लाजपतिराय जी ने वर्त्तमान राजनैतिक नेताओं से पूर्ण रीति पर हाथ बढ़ाया, **एक्सट्रैमेट** (गर्मदल) तो न थे किन्तु **मायड्रेट** (नर्मदल) के प्रसिद्ध नेता हुये। अब ला० लाजपतिराय जी और उन के कुछ थोड़े इष्ट मित्रों के कारण से जो ब० राजनैतिक सभा में प्रवेश हुये थे, आर्य्यसमाज के विरोधियों को यह दोषारोपण करने का प्रधान लक्ष्य प्राप्त हो गया कि आर्यसमाज भी प्रबल राजनैतिक व राजविद्रोही दल है।

उपसंहार

अब मैं इस **"आर्यसमाज का संक्षिप्त इतिहास"** के प्रकरण को समाप्त करते हुये इस विषय की विवेचना करता हूं कि जो प्रायः लोग कहा करते हैं कि १९०७ ई० के राजनैतिक व स्वदेशी आन्दोलन से और ला० लाजपतिराय के देश निष्काशन होने से आर्यसमाज भयभीत हो गया इत्यादि २— प्यारे पाठको! स्मरण रक्खो कि आर्यसमाज भयभीत क्योंकर हो सक्ता है क्या इस का पौदा लगाने वाला महर्षि दयानंद भयालु व किंपुरुष था— नहीं नहीं कदापि नहीं! परन्तु हां इस आधुनिक थोथले राजनैतिक तथा मारधर पकड़ इत्यादि झंझटों में व्यर्थ समय गँवाने से प्रथम ही आर्यसमाज उदासीन था, और है, और रहैगा— आज कल भारतवर्ष में अनेक धर्म व जाति की सभाओं के लोग मुख्य २ नगरों में सभायें कर २ के धूम मचारहे हैं कि हम राजभक्त हैं! हम देशभक्त हैं!! हम प्रजाभक्त हैं!!! इत्यादि २ मन्तव्य पास हो रहे हैं। कोई राजभक्त बनकर देशभक्तों से द्रोह कर रहा है कोई देशभक्त बनकर राजभक्तों को उल्टी पुल्टी सुना रहा है, परन्तु आर्यसमाज आज तक न कभी राजद्रोही न देशद्रोही और न प्रजाद्रोही था तो क्योंकर आज इस नवीन पदवी अथवा नवीन भक्ति की कण्ठी धारण करै क्योंकि भाव में अभाव और अभाव में भाव नहीं हो सक्ता, आर्यसमाज अपने पांचवें नियम के अनुसार **सब काम धर्म्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को बिचार के करैगा** चाहै राजा हो चाहै प्रजा किसी का

लेशमात्र पक्षपात नहीं, जिन्ह की ओर से अन्याय का उपचार होवैगा अवश्य निशंक भाव से आर्यसमाज सत्यसमालोचना कर सकैगा क्योंकि उस का अन्तिमोद्देश्य **"निन्दन्तु नीति निपुणा यदि वा स्तुवन्तु लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्। अद्यैव वा मरण मस्तु युगान्तरेवा न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः"** है—

इसके अतिरिक्त किसी २ मन्द बुद्धि द्वेषी और कुविचार वाले पुरुषों ने हमारी न्यायशीला गवर्नमेण्ट को महर्षि तथा अन्य आर्यसमाजिक पुस्तकों में राजविद्रोह सिद्ध कर दिखलाने की चेष्टा की है, इस विषय पर विशेष लिखने की कोई आवश्यकता न थी क्योंकि मुट्ठी भर धूली उठाकर सूर्यभुवनभास्कर को कोई छिपा नहीं सक्ता, उलटे वह धूली उस ही के मुख पर आ पड़ती है, परन्तु कतिपय अर्धशिक्षित आर्यभाई इस विषय को किसी विपक्षी के मुख से सुनकर घबड़ा उठते होंगे, एतदर्थ उन्हीं के लिये द्वितीय प्रकरण में इस विषय के सिद्ध करने की चेष्टा की जावैगी ॥ ओ३म् शम् ॥

इति आर्यसमाज का संक्षिप्त इतिहास

समाप्तोयम् ।

* ओ३म् *

द्वितीय प्रकरण.

आर्यसमाज व वर्त्तमान राजनैतिक और

सत्यार्थप्रकाश और राजविद्रोह

आर्यसमाज पर झूंठी शिकायत

आर्यसमाज के विरोधियों को इसप्रकार का अवसर आर्योंकी शिकायत करने की सफलता अनायासही प्राप्त होजाना कुछ दुस्तर न था क्योंकि इधर दो एक बर्षों से राजनैतिक व स्वदेशी आन्दोलन में बंगाल व पंजाब के प्रान्तों में धर पकड़ मारपीट का निन्दनीय कार्य आरम्भ होगया जिसको वर्त्तमान शासन कर्त्ताओं ने उक्त कार्यों को राजविद्रोहात्मक आन्दोलन मान लिया है। उधर विरोधी दलने गवर्मेन्ट को यह सुझाना आरम्भ करदिया कि जिस स्थान पर आर्यसमाज की अतीव प्रावल्यता है वहां राजविद्रोहियों का दल उन्नतिको प्राप्त होरहा है, परन्तु उन चुगुलखोर व खुशामदी टट्टुओं को यह मालूम होसका कि बंगाल व मद्रास के प्रान्तों में जहां आर्यसमाज की स्थिति केवल नाममात्र ही है वहां पर आधुनिक राजविद्रोह या वर्त्तमान राजनैतिक आन्दोलन विशेष अधिकता से क्यों होरहा है? और युक्त प्रान्त में जहां आर्यसमाज की संख्या ३०० से कहीं अधिक और जिसकी उन्नति सारे भारतवर्ष में प्रख्यात है वहां पर किसी प्रकारका आन्दोलन स्वप्न में भी नहीं हुआ है, परन्तु हाय! " काक कहहिं कल कण्ठ कठोरा " के कथनानुसार नीच अपनी नीचता से नहीं चूकते, हे

नीचो ! तुम क्यों अपनी नीचता व धृष्टता को संसार में प्रख्यात करने का प्रबन्ध कर रहे हो, याद रक्खो ! इस घृणित कार्यवाही करने से आर्यसमाज का बालबांका न होगा, बृटिश गवर्मेन्ट हम तुम से कहीं अधिक दूरदर्शी व बुद्धिमान है, वह तुम्हारी लल्लो चप्पो व कानाफुस्सी पर किन्चिन्मात्र भी ध्यान न देवैगी, क्योंकर देसक्ती है ! क्या कोई आजतक यह सिद्ध करने का साहस करसक्ता है कि आर्यसमाज ने कभी अपने प्लेटफार्म पर ब० राजनैतिक सम्बन्धी व्याख्यान दिया है—कदापि नहीं ! हां यदि मैं भूलता न होऊं तो शायद एक मर्तबा " कांग्रेस " के अधिवेशन में जिसका समय लग भग २२ वर्ष के होगा युक्त प्रान्त की दो एक समाजोंने धोखे से उस सभामें अपना प्रतिनिधि भेज दिया था परन्तु उस समय " कांग्रेस" का आरम्भ वर्ष होने से उस्का पूर्ण उद्देश्य ठीक २ किसी को मालूम न था, पश्चात् आर्यसमाज के नेताओं ने " आर्यसमाज के नियमोप नियम " में एक धारा अर्थात् ४१ वीं धारा और बढ़ादीनी जिसका आशय इसप्रकार है कि " ४१—कोई आर्यसमाज (बहैसियत मज-मुई) सामाजिक हैसियत से किसी पोलिटीकल (राजसम्बन्धी) प्रेरणा या कामों में सराहतन या मानियन (प्रकट व गुप्त रीतिसे) शरीक़ या दस्तन्दाज़ (सम्मिलित व सम्बन्ध रखनेवाला) न होगा " यदि कहा जाय कि ला० लाजपतिराय तो आर्यसमाजी ही थे वे क्यों कर ब० राजनैतिक दल के अग्रगन्ता हुये ? तो मैं कह सक्ताहूं कि लाला साहब आर्यसमाज की हैसियत में कभी उक्त आन्दोलन में प्रवृत्त नहीं हुये परन्तु निजी हैसियत से वे स्वतन्त्र हैं, निजी हैसि-यतसे कोई सामाजी अपना घर लुटा देवै या कृषी न करके वाणिज्य ही का कार्य करै इन सब बातोंका उत्तरदाता आर्यसमाज नहीं है। जैसे मान्यवर पं० बालगंगाधर तिलक व पं० गोपालकृष्ण गोखले व पं० मदनमोहन मालवी इत्यादि के राजनैतिक अधिष्ठाता होने से " भारतधर्म महामण्डल " ब० राजनैतिक सभा नहीं होसक्ती, उसी प्रकार सरहेनरीकाटनसे मसीही मिशन (कृश्चियन सुसायटी) और सैय्यद हैदररज़ा व मोलवी लियाक़तहुसेन व मि० रसूल के राज-नैतिक मुखिया होने से मज़हब इसलाम राजनैतिक दलों में गणना

नहीं किया जासक्ता है—हां यदि एक अंश में विचार किया जावे तो सम्पूर्ण संसार में कोई धर्म व जातिही नहीं जिसका सम्बन्ध वास्तविक राजनैतिक से न हो। वेद जो सम्पूर्ण विद्याओं का भण्डार है वह क्योंकर राजनैतिक से रहित होसक्ता है, जो वास्तव में शुद्ध राजनैतिक का आदि मूल कारण है, परन्तु वह सर्वदेशी हैं किसी विशेष देश व जाति के लिये नहीं, हमारे वेद शास्त्रों में "राजविद्रोह" को अति जघन्य व महापाप मानागया है, महर्षि दयानन्द के समय वाले मनुष्य जो इस समय उपस्थित हैं उनसे पूंछ पांछ करने पर पता लगता है कि महर्षि इस वृटिश राज्यके धर्म स्वतन्त्रतादि निनियमों की सदा प्रसंशा किया करते थे। और सभाकी समाप्ति पर राजराजेश्वरी महाराणी विक्टोरिया को धन्यवाद देतेहुये कहते थे कि धन्य है यह राज्य को! कि जिसमें मैं स्वतन्त्रता व निर्भयता पूर्वक अन्य मतों के दूषित विषयों की समालोचना व धड़िल्ले से खण्डन मण्डन जो इस समय कररहा हूं, यदि कहीं अन्यराज्य होता तो मेरा शिर उड़ा दियाजाता, अस्तु! क्या महर्षि दयानन्द ने इन वाक्यों में स्वार्थपना व चाटुवादिता का प्रयोग किया है ? कदापि नहीं, इसके अतिरिक्त एक चिट्ठी † महर्षि जीने अपने योग्य शिष्य श्रीयुत पं० श्यामजी कृष्णवर्मा स्थान लन्डनको भेजी थी, जिसके विषय में समालोचना रूपक से श्रीमान् प्रसिद्ध प्रोफेसर मि० **मोनियर विलियम्स** ने अक्टूबर १८८० ई० में स्थान आक्सफोर्ड से लिखकर लण्डन के किसी प्रसिद्ध पत्र मे छपवाया था, जिसके अन्तिम लेख से महर्षि दयानन्दको राजराजेश्वरी महाराणी विक्टोरिया का एक सच्चा हितैषी सिद्ध किया है, जिसका आशय यह है "इससे भारतके विद्वान् और बुद्धिमान धार्मिक आचार्यों के अन्तरीय भावों का इंगलेण्ड के विषय में पता लगता है, जिसके राज्य प्रबन्ध में वे लोग शान्तिपूर्वक निर्विघ्न रीतिसे पुस्तकों को

---

† नोट—यह चिट्ठी विस्तार पूर्वक "तृतीय प्रकरण" में लिखी जावैगी (अनुवादक)॥

पढ़ते और सुधार विषयक प्रचार करते हैं जो लोग इस सम्बाद में दत्त चित्त थे कि " **एम्प्रेस आफ इण्डिया** " का यथार्थ अनुवाद क्या है ? उनके लाभ के लिये मैं यह भी दर्शाना चाहताहूं कि दयानन्द ने " **राजराजेश्वरी** " का प्रयोग लिखा है ॥

पाठको ध्यान पूर्वक पढ़िये ।

अब मैं प्रथम प्रकरण के अन्तिम लेखानुसार विरोधियों के उस कुटिल चाल की संक्षिप्त समालोचना करने के लिये लेखनी उठाता हूं जिन क्षुद्र बुद्धि चुगुलखोरों ने हमारे शासन कर्त्ताओं (हुक्कामों) को भड़काने के लिये "**सत्यार्थ प्रकाश**" में राजविद्रोहात्मक लेख सिद्ध करने का साहस किया है—

सत्यार्थ प्रकाश *

यह पुस्तक आर्यसमाज के स्थापक महर्षि दयानन्द की उस अन्वेषणा का कोष है कि जो उन्हों ने वेद शास्त्र और नाना प्रकार के मतमतान्तरों के धार्मिक पुस्तकों की स्वतन्त्रता व निर्भयता पूर्वक सुसम्मति प्रकाश की है ।

इस ग्रन्थ के रचना का और स्वयम् निज अभिप्राय ग्रन्थ के अन्तिम पृष्ठ पर निम्न प्रकार से लिखा है "सर्व सत्य का प्रचार कर सब को ऐक्य मत में कर द्वेष छुड़ा परस्पर में दृढ़ प्रीति युक्त कराके सब से सब को सुख लाभ पहुंचाने के लिये मेरा प्रयत्न और अभिप्राय है । सर्व शक्तिमान् परमात्मा की कृपा, सहाय और आप्तजनों की **सहानुभूति से यह सिद्धान्त सर्वत्र भूगोल में शीघ्र प्रवृत्त हो जावे**, जिससे सब लोग सहज में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष

महर्षि के इस ग्रन्थ को रचने का मुख्य अभिप्राय

* (नोट) सत्यार्थ प्रकाश सप्तम बार व सं० १९६१ विक्रमी का छपा हुआ से लिखा गया है । (अनुवादक)

की सिद्धि करके सदा उन्नति और आनन्दित होते रहैं यही मेरा मुख्य प्रयोजन है" इससे सिद्ध है कि महर्षि का अभिप्राय इस पुस्तक के बनाने में केवल आर्य्यावर्त्तही (INDIA) की उन्नति और आनन्दित करने का नहीं है— बल्कि आर्य्यावर्त्त, रूस, रूम, एसिया, और यूरुप, अफ्रिका, अमेरिका इत्यादि देशों की उन्नति और आनन्दित करने के लिये यह पुस्तक बनाई गई है। अतएव विरोधी अथवा कोई यह कहै कि सत्यार्थ प्रकाश वृटिश राज्य को आर्य्यावर्त्त से वहिस्कृत करने के लिये बनाई गई है यह उस का पामरपन है।

ग्रन्थ का भाग

यह ग्रन्थ दो भाग पूर्वार्द्ध व उत्तरार्द्ध और १४ चौदह समुल्लासों में विभाजित है पूर्वार्द्ध में दस समुल्लास और उत्तरार्द्ध में चार समुल्लास हैं इन सब की समाप्ति पर ग्रन्थकर्त्ता की "स्वमन्तव्यामन्तव्य" उल्लेख है, जो कि आर्यसमाज का भी मन्तव्य है, इन सम्पूर्ण १४ समुल्लासों में षष्ठ समुल्लास सब और अष्टम नवम और एकादश समुल्लास के कुछ अंशों में राजनैतिक शिक्षा सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है। विशेषत: षष्ठ समुल्लास का ही राजनैतिक से सम्बन्ध है— इस में यह बतलाया गया है कि महर्षि की राय में राज सम्बन्धी नियम क्या है, जिन पर कि सम्पूर्ण संसार के राज्याधिकारीगणों को नियमानुसार अनुयायी होना चाहिये, इस में कहीं भी केवल आर्य्यावर्त्त और वृटिश राज्य की चर्चा नहीं आई, और न यह लिखा है कि आर्य्यावर्त्त में वृटिशराज्य का बर्त्ताव व नियम किस प्रकार का होना चाहिये, इसमें जो कुछ बतलाया गया है वह सर्व्व देशी और सर्व सम्बन्धी नियमों का प्रतिपादक है। किसी विशेष जाति और देश अथवा धर्म से इसका लेशमात्रभी सम्बन्ध नहीं है, प्रमाण के लिये कुछ संक्षिप्त समालोचना निम्नि लिखित है।

षष्ठ समुल्लास की समालोचना

इस समुल्लास के १४३ पृष्ठ में मनुस्मृति अ० ७ श्लोक २ का प्रमाण देकर लिखा गया है कि जैसा परम विद्वान् ब्राह्मण होता है, वैसा ही सुशिक्षित होना क्षत्रिय

को योग्य है कि वे सब रक्षा न्याय से यथावत् करें उस का प्रकार यह है— **त्रीणि राजानः विदथे पुरूणि परि विश्वानि भूषथः सदांसि ।** ऋग्वेद मं० ३ सूत्र ३८ मं० ६ ॥

अर्थः—ईश्वर उपदेश करता है कि (राजान.) राजा और प्रजा के पुरुष मिल के (विदथे) सुखप्राप्ति और विज्ञान वृद्धि कारक राजा प्रजा के सम्बन्ध रूप व्योवहार में (त्रीणि रक्षांसि) तीन सभा अर्थात् विद्यार्य सभा, धर्म्मार्य्य सभा, राजार्य्य सभा नियत कर के (पुरूणि) बहुत प्रकार के (विश्वानि) समग्र प्रजा सम्बंधी मनुष्यादि प्राणियों को (परि भूषथः) सब ओर से विद्या स्वातंत्र्य धर्म सु शिक्षा और धनादि से अलंकृत करें । इस का अभिप्राय महर्षि ने अपनी ओर से यह कहा है कि "एक को स्वतन्त्र राज्य का अधिकार न देना चाहिये किन्तु राजा जो सभापति तदाधीन सभा, सभाधीन राजा, राजा और सभा प्रजा के आधीन और प्रजा राजसभा के आधीन रहें" यह प्रबन्ध वृटिश राज्य में प्रथम ही से नियत है— इस लिये ऐसा प्रबन्ध कराने की आवश्यकता महर्षि को न थी कि कोई विशेष शिक्षा इस विषय में देते हां यदि इस विषय में आवश्यकता है तो यह है कि वृटिश राज्य को वैदिक राज्य कहलाने का सौभाग्य प्राप्त हो, जिसके लिये प्रजा को आवश्यकीय है कि पवित्रात्मा, जितेन्द्रिय, अहिंसक, सदाचारी व विश्वासी और विद्वान् राजभक्त हों ताकि वे हमारी न्यायशीला गवर्नमेण्ट के शासनकर्त्ताओं के सन्मुख वैदिक धर्म प्रचार के विषय में सम्भाषण करने की योग्यता प्राप्त कर वृटिश जाति की कक्षा में सम्मिलित हो सकें और उन को वैदिक विज्ञान द्वारा क्रिश्चियन मत से घृणा उत्पन्न कर के वैदिक मतानुयायी बना सकें । इसके आगे राजा के गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन कर के राजसभा (पार्लीमेण्ट) के सभासदों की योग्यता बतलाते हुये पृष्ठ १४८ व १४९ में यह दर्शाया है कि वास्तव में शासन कर्त्ता दण्ड (सज़ा) ही है— तत्पश्चात् पृष्ठ १५१ में उचित कार्य्यों और इन्द्रियारामी (ऐय्याशी) इत्यादि की समालोचना करते हुये जितेन्द्रिय होने पर अधिक

बल दिया है। पृष्ठ १५३ पर मनुजी के बचनों को उद्धृत कर के लिखा है कि "स्वराज्य" स्वदेश में उत्पन्न हुये, वेदादि शास्त्रों के जानने वाले, शूरवीर, जिनका लक्ष्य अर्थात् विचार निष्फलनहो और कुलीन अच्छे प्रकार सुपरीक्षित धर्मात्मा सात आठ उत्तम धार्मिक चतुर "सचिवान्"—अर्थात् मन्त्रीकरै। इस स्थान पर आवश्यकीय है कि शब्द" वेद व धर्म" की विवेचना कर दीजावै। इस के लिये केवल "स्वमन्तव्यामन्तव्य" के संख्या २ पृष्ठ ६३१ पर्याप्त है कि वेद क्या है "चारों वेदों (विद्या धर्मयुक्त ईश्वर प्रणीतसंहिता मंत्र भाग) को निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण मानता हूं इत्यादि" अर्थात् वेद विद्या और न्याय की शिक्षाकाही महानिधि है, इसलिये वही निर्भ्रान्त स्वतः प्रमाण है-रहा "धर्म" की विवेचना उसके विषय में जानना चाहिये कि हमारे सत्य शास्त्रों में धर्मको पर्यायवाचकीय अर्थों से काम लियागया है, इस विषय को न जानने से बहुत निर्बुद्धि लोग इस धर्म शब्दके विषयको कहीं का कहीं पर लगाते हैं, जिसका वास्तविक तात्पर्य नहीं प्राप्त होसक्ता है, उदाहरण में देखो कि धर्म शब्द कहीं सत्यता कहीं अहिंसकता कहीं सदाचारही पर लगाये गये हैं। परन्तु अद्यावधि साधारण रीति पर मत मतान्तरों परही घटित किया गयाहै, यह वर्तमान विषय में केवल राजनैतिकही से सम्बन्ध है, जिनका घनिष्ठ सम्बन्ध महर्षि ने अधिकतर मनुस्मृति पर रक्खा है। इसलिये इस स्थान पर "धर्म" शब्द का अर्थ वही लेना उचित है जो इसी विषय में स्वयम् मनुजी ने लिखा है-देखो सत्यार्थप्रकाश पृष्ठ १४७ "**सराजा पुरुषोदण्डा स नेता शासिता च सः। चतुर्णामाश्रमाणं च धर्मस्य प्रतिभूःस्मृतः**' मनु० ७।

अर्थ—जो दण्ड है वही पुरुष, राजा, वही न्यायका कर्त्ता और सबका शासनकर्त्ता वही चारवर्ण और चारों आश्रम के धर्म का प्रतिभू (ज़ामिन) है"। महर्षि के सन्मुख राजा का धर्म केवल दण्ड है, परन्तु दण्ड वह है जिससे न्याय का प्रचार और सबको

अपने २ उचित कार्यों में तत्पर कराना, प्रजा पर शासन और उसकी रक्षा करना हो। यहां पर इस विषय से कोई सम्बन्ध नहीं है कि राजा किस धर्म (मज़हब) व किस जाति का हो । हां यहां इस विषय पर ध्यान आकर्षित होना आवश्यकीय है कि मनुजीने बतलाया है कि मन्त्री उस मनुष्य को होना उचित है कि जो अपने राज्य व देश का उत्पन्न व निवासी हो, इससे स्पष्ट प्रकट है कि अन्य देश व अन्य राज्य का निवासी मंत्री कदापि न किया जावै। इस व्यवस्थानुसार आर्यसमाजके निकट मंत्री पद पर भारतवर्ष अथवा इंगलेण्ड का निवासी हो परन्तु अन्यदेशी व अन्य राज्य का न हो। अतः वर्त्तमान प्रणाली के अनुसार भी इस समय भारतवर्ष के प्रधान मंत्री एक इंगलेण्डीय जन है। इसलिये भी आर्यसमाजकी विशेष शिकायत नहीं होसक्ती है। इसके पश्चात् पृष्ठ १५४ में अन्य राज्याधिकारियों (मुलाज़िमान सल्तनत) का निर्वाचन और उनके कर्त्तव्यों की विवेचना इत्यादि का वर्णन है। पृष्ठ १५५, १५६, १५७ और १५८ पर युद्ध के समय इस विषय का कर्तव्य बतलाया है कि स्त्रियों, बालकों और बृद्ध इत्यादि युद्ध के अनाधिकारियों पर अस्त्र, शस्त्रों का प्रयोग कदापि न किया जावै। युद्धके पलायित (मफ़रूर) पुरुष कठोर दंडिनीय है, और विजय प्राप्त (गनीमत) सम्बन्धी द्रव्यादि किस प्रकार उपयोग किया जावै, पुनः अन्तरंग राज्य प्रबंध (अन्दरूनी इन्तिज़ाम मुल्क) करके विजय प्राप्त देशके प्रत्येक प्रान्तको विभाजित करके शासनाधिकारियों व प्रबन्धकर्त्ताओं के सुपुर्द करना, और उत्कोच गुप्तधन (रिशवत) लेनेवाले कर्मचारियों को विशेष दंडनीय करना, करों की प्राप्त का प्रबन्ध आदि राजा के स्वयम् सदाचार पुनः मुद्रालय (टकसाल घर) का प्रबन्ध और युद्ध के नियम भिन्न २ प्रकार के अस्त्र शस्त्रों का सुधार करना और भिन्न २ व्यूहों का निर्म्माण करना इत्यादि २-१७१ पृष्ठ तक लिखकर १७१ पृष्ठ से पराजित शत्रुओं के साथ निम्न प्रकार का बर्ताव करना बतलाया है "जीतकर उन के साथ प्रमाण अर्थात् प्रतिज्ञादि लिखा लेवै और जो उचित समय समझे तो उसी के वंशस्थ किसी धार्मिक पुरुष को राजा करदे और उस से लिखा

लेवै कि तुम को हमारी आज्ञा के अनुकूल अर्थात् जैसी धर्मयुक्त राज्य की नीति है उस के अनुसार चल के न्याय से प्रजा पालन करना होगा ऐसे उपदेश करै ऐसे पुरुष उस के पास रक्खै कि जिससे पुनः उपद्रव न हो और जो हार जाय उस का सत्कार प्रधान पुरुषों के साथ मिलकर रत्नादि उत्तम पदार्थों के दान से करै। और ऐसा न करै कि जिससे उस का योग क्षेम भी न हो जो उस को बन्दीग्रह करै तौ भी उस का सत्कार यथा योग्य रक्खै, जिससे वह हारने के शोक से रहित हो के आनन्द में रहै। क्यों कि संसार में दूसरे का पदार्थ हरना अप्रीति और देना प्रीति का कारण है, और विशेष कर के समय पर उचित क्रिया करना और उस पराजित को मनवांछित पदार्थों का देना बहुत उत्तम है। और कभी उस को चिढ़ावै नहीं न हंसी और न ठट्ठा करै न उस के सामने हमने तुझ को पराजित किया है ऐसा भी न कहै किन्तु आप हमारे भाई हैं इत्यादि मान प्रतिष्ठा सदा करै" इसके पश्चात् पृष्ठ १७३ पर प्रजा से कर ग्रहण (वसूल मालगुज़ारी) करने का यत्न लिखते हुये लिखा है कि "दोनों अपने २ काम में स्वतन्त्र और मिले हुये प्रीति युक्त परतन्त्र रहैं। प्रजा की साधारण सम्मति के विरुद्ध राजा व राज पुरुष न हो राजा की आज्ञा के विरुद्ध राज पुरुष व प्रजा न चलै इत्यादि"

पाठको ध्यान दीजिये! देखिये कैसा उत्तम स्वर्णाक्षर में अंकित करने योग्य महर्षि का बचन है— क्या अब भी कोई विरोधि महर्षि कृत ग्रन्थों पर राजविद्रोह का दोषारोपण करता हुआ लज्जित न होगा और क्या इस विषय पर अंतःकरण में कुछ भी विचार न कर सकैगा कि वह राज पुरुष व प्रजा जिन को धार्मिक और स्वभाविक शिक्षा आर्यसमाज और सत्यार्थ प्रकाश द्वारा यह प्राप्त होती है कि **"राजा के विरुद्ध राज पुरुष व प्रजा न चलै"** उस पर राजविद्रोह का दोषारोपण क्योंकर हो सक्ता है। क्या इस कारण कि यहां राजा का उचित बर्ताव भी प्रजा की बहु सम्मति के विरुद्ध न चलना बतलाया है? यह भी

नहीं यदि हमारी न्यायशीला वृटिश गवर्नमेण्ट को प्रजा की बहु सम्मति पर राज कार्य्य करना अभीष्ट न होता तो महाराज सभा (पार्लियामेण्ट) व उपराज सभा (लाट कौंसिल) इत्यादि सभायें कदापि न स्थापित करती। क्या वे नहीं जानते कि महर्षि ने यह निन्दनीय शिक्षा कदापि नहीं दी कि यदि कोई (चाहे राजा हो चाहे प्रजा) अपना धर्म त्याग कर तुम्हारे साथ अधर्म का बर्ताव करे तो तुम भी उसी के साथ अधर्मी बन जाओ। नहीं २ कदापि नहीं ! हाय ! स्वार्थपना भी क्या ही अद्भुत वस्तु है।

पृष्ठ १७५ में अभियोगों के न्याय करने का बर्ताव और प्रत्येक समय धर्म (न्याय) को प्रत्यक्ष करना लिखकर पृष्ठ १७८ से १८५ तक साक्षियों का धर्म और उन के सत्यासत्य का विवरण लिखा है— पृष्ठ १८४ पर लिखा है कि अभियोग द्वारा गुरू, पिता और पुत्रादि सभी न्यायानुसार दण्डनीय हैं— और न्याय ही से सर्वदा बर्ताव रखना राजा का मुख्योद्देश्य है। अन्त में पृष्ठ १८५ व १८६ में अत्युत्तम शिक्षा दी है कि " जो नियम राजा और प्रजा के सुखकारक और धर्मयुक्त समझे उन २ नियमों को पूर्ण विद्वानों की राजसभा बांधा करे परन्तु इस पर नित्य ध्यान रक्खे कि जहां तक बनसके वहांतक बाल्यावस्था में विवाह न करने देवे- युवावस्था में भी बिना प्रसन्नता के विवाह न करना, न कराना, और न करने देना ब्रह्मचर्य्य का यथावत् सेवन करना, व्यभिचार व बहु विवाह को बन्द करे कि जिससे शरीर और आत्मा में पूर्ण बल सदा रहे " फिर लिखते हैं कि" इस पर भी ध्यान रखना चाहिये कि **यथा राजा तथा प्रजा** जैसा राजा होता है वैसी ही उस की प्रजा होती है इसलिये राजा और राज पुरुषों को अति उचित है कि कभी दुष्टाचार न करें किन्तु सब दिन धर्म व न्याय से वर्त्त कर सब प्रजा के सुधार के दृष्टान्त बनें " इसी पृष्ठ में महर्षि लिखते हैं कि " विशेषतः क्षत्रियों को दृढांग व बलयुक्त होना चाहिये क्योंकि जब वेही विषयासक्त होंगे तो राजधर्मही नष्ट हो जावेगा " इस लेख पर विरोधियों का उस समय आक्षेप करना अत्योचित होता

जबकि आर्यसमाज वर्ण व्यवस्था जन्मही पर निर्भर रखती, परन्तु यहां तो आर्यसमाज वर्णव्यवस्था कर्मानुसार सिद्ध करने को सर्वदा उद्यत है और उसका एक मुख्य मन्तव्य भी है, राज्य प्रबंध क्षत्रिय का कर्म उक्त सिद्धान्तानुसार है चाहै किसी वर्ण में जन्म लिया हो अब इस षष्ठ समुल्लास की समालोचना समाप्त करते हुये आर्य-समाज के विरोधियों से नम्रता पूर्वक प्रार्थना करते हैं कि कृपापूर्वक हृदय पर हाथ धरकर न्यायपूर्वक बतला दें कि क्या इस समुल्लास में से कोई एक शब्द भी राजविद्रोहात्मक सिद्ध करने का साहस कर सका है ? कदापि नहीं ॥

अष्टम समुल्लास की समालोचना

यह समुल्लास सृष्टीयोत्पत्ति के विषय में है पृष्ठ २३८ में लिखा है कि श्रेष्ठों का नाम आर्य, विद्वान् और देव है । पृष्ठ २३६ में यह बतलाया है कि आर्यावर्त्त को देव अर्थात् विद्वानों ने बसाया है और आर्य जनोंके निवास करनेसे आर्यावर्त्त कहाया न कि कतिपय अर्धशिक्षित अज्ञाती इतिहास वेत्ताओं के कथनानुसार लोग ईरान से आये इसीसे इन लोगों का नाम आर्य हुआ और यहां के पूर्व निवासियों को हटाकर अपना अधिकार जमाया, अदूरदर्शी, विरोधीजन चाहै कुछही कहैं, परन्तु महर्षि का यह बतलाना उचितही था (जबकि वेद शास्त्रों के लेखानुसार जिन को वह स्वतःप्रमाण और सृष्टीयोत्पत्ति का आरंभ तिब्बत का स्थान मानते थे) कि वह आरम्भिक सृष्टि का मनुष्य जिसके द्वारा सम्पूर्ण मनुष्यों को वैदिकधर्म और शिक्षा का अमूल्य रत्न प्राप्त हुआ कौन था, और सृष्टिकी उन्नति दशा पर मनुष्योंकी सन्तानने कहां पर नि-वास स्थान बनाया, उक्त विषयों का विवरण महर्षिने पृष्ठ २१४ में लिखा है कि " प्रथम सृष्टिकी आदि में परमात्मा, ने अग्नि, वायु, आदित्य तथा अंगिरा इन ऋषियों की आत्मा में एक एक वेद का प्रकाश किया " और फिर पृष्ठ २१४ में " ब्रह्माके आत्मा में अग्नि आदि के द्वारा स्थापित कराया " इत्यादि अब आगे स्पष्टरूप से पृष्ठ २४० में लिखा है कि " ब्रह्माका पुत्र विराट, विराट का मनु, मनुके मरिच्यादि दस इनके स्वायम्भू आदि सात राजा और उनके

सन्तान इक्ष्वाकु आदि राजा जो आर्यावर्त्त के प्रथम राजा हुये जिन्हों ने यह आर्यावर्त्त बसाया है" इससे ऊपर की पंक्तियों में यह लिखा गया है कि "इक्ष्वाकु से लेकर कौरव, पांडव तक सर्व भूगोल में आर्यों का राज्य और वेदों का थोड़ा २ प्रचार आर्यावर्त्त से भिन्न २ देशों में भी रहा" आगे चलकर महर्षि आर्यों के चक्रवर्त्ती राज्य के नष्ट भ्रष्ट सत्यानाश होने का कारण पृष्ठ २४१ में लिखते हैं कि "अब अभाग्योदय से आर्यों के आलस्य, प्रमाद परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी, किन्तु आर्यावर्त्त में भी आर्यों का अखण्ड स्वतन्त्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं है, जो कुछ है सो भी विदेशियों के पादाक्रान्त हो रहा है कुछ थोड़े राजा स्वतन्त्र हैं"

देखिये ! इन शब्दों में अन्य देशों को छोड़कर आर्यावर्त्त के राज्य से वञ्चित होने का दोष महर्षि, आर्यों ही के प्रमाद, आलस्य और परस्पर के द्रोह का कारण बतलाते हैं । अन्य देशस्थ राजाओं के कार्यवाहियों पर नहीं, क्योंकि वह स्वयम् जानते थे कि आलसी, प्रमादी और परस्पर में द्रोह करने वाली जाति कदापि राज्याधिकारी नहीं हो सक्ती । और धार्मिक, शूर, वीर, न्यायकारी, और सौहृद जन्य जाति राज्य का प्रबन्ध पूर्ण रीति से कर सक्ती है, इसी से महर्षि ने विशेषतः राज धर्म प्रकरण (षष्ठ समुल्लास) में राजा के लिये सदाचारी, जितेन्द्री, न्यायकारी आदि होना लिखा है, क्या इस से राजविद्रोह सिद्ध हो सक्ता है कदापि नहीं ।

पुनः इस ही पृष्ठ में लिखते हैं कि "दुर्दिन जब आता है तब देश वासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है, कोई कितना ही करै परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है, अथवा मत मतान्तरों के आग्रह रहित, अपने व पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता पिता के समान कृपा न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं, परन्तु भिन्न २ भाषा पृथक् २ शिक्षा अलग २ व्योहार का विरोध

छूटना अति दुष्कर है बिना इसके छूटे परस्पर का पूरा उपकार और अभिप्राय सिद्ध होना कठिन है"

प्रिय पाठक जनों ! अब विरोधी जन उपरोक्त लेख पर अधिकतर राजविद्रोह सूचक लेख सिद्ध करने के लिये तैय्यार हो जावेंगे क्योंकि इसमें लिखा है कि "**कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है** और फिर **बिदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है** इत्यादि"। परन्तु क्या जिसके सिर में मस्तिष्क और मस्तिष्क में बुद्धि का लेशमात्र भी सञ्चार हो वैगा वह बतला सक्ता है कि महर्षि ने इस स्थान में असत्य अथवा राज विद्रोह सूचक बचन कहा है कदापि नहीं वलिक इस का तात्पर्य यह है कि जैसे घर में सारा कुटुम्ब होते हुये भी माता की ममता व स्नेह स्वाभाविक ही में प्रबल होती है तो क्या इससे सारा कुटुम्ब शत्रु कहा जा सक्ता है कदापि नहीं हां उस से मध्यम कक्षा की ममता व स्नेह अपर कुटुम्बों का कहा जा सक्ता है महर्षि ने उक्त बचनों को स्वाभाविक में कहा है कुछ ईर्षा, द्वेष से नहीं। यदि नहीं ! तो क्या आर्यसमाज के विरोधी मुसलमान, बाईमान "खुदा के लिये" हृदय पर हाथ धर कर कह सक्ते हैं कि यह बचन राज विद्रोह सूचक है, यदि है ! तो सुलतान रूम तथा अमीरकाबुल को "खलीफ़ा" की पदवी प्रदान करके सर्वोपरि माननीय करना और राजराजेश्वर सप्तम एडवर्ड को जो लक्षों किरोड़ों मुसलमानी क़ौमों के शासन कर्त्ता महाराज हैं उनको "खलीफ़ा" की पदवी न देना अथवा मुहम्मदी मतानुसार "खुतवा" में उनका नाम न शामिल करना क्या राजविद्रोह सूचक कार्य नहीं है ? और क्या इस विषय का प्रमाण नहीं है कि मुसलमान अपने ईमान और धर्म से किसी मुसलमानी राज्यको वृटिश राजकी समता (तरजीह) प्रदान करने में कभी तैय्यार होसक्ते हैं ?

कभी नहीं ! अथवा हमारे ईसाई भाई स्लेब का बोसा देकर कह सक्ते हैं कि मुहम्मदी, चीनी अथवा बौद्ध के राज्य में प्रजा के ढंग पर रहकर उनका सर्वदा यह प्रयत्न नहीं रहा कि शीघ्रही मुहम्मदी या बौद्ध का राज्य ईसाई राज्य में शामिल होजावे । अब हम नहीं जानते कि यह सब होते हुए भी उपरोक्त विषयों से किसप्रकार यह परिणाम ग्रहण किया जासक्ता है कि महर्षि दयानन्द अथवा आर्य-समाजने लोगों को बृटिश राज्यके विरुद्ध भड़काया है, और गव मेंण्ट से विरुद्धता करनेही के लिये धर्मकी आड़ में आर्यसमाज की अभिलाषा है ।

देखो और ध्यान पूर्वक देखो ! उक्त विषय को लिखकर पश्चात् महर्षि आर्यों को क्याही उचित शिक्षा देते हैं " इसलिये जो कुछ वेदादि शास्त्रों में व्यवस्था व इतिहास लिखे हैं उन्हीं का मान्य करना भद्र पुरुषों का काम है" क्या इससे स्पष्ट प्रकट नहीं है कि महर्षि दुष्ट, पापी और नीच लोगों को परित्याग कर इस प्रकार की व्यवस्था में जबकि वास्तव में बृटिश राज्य भिन्न २ मतों का पक्षपात और अपने पराये का अन्य वर्त्ताव से सर्वदा पृथक् रहता है, और प्रजा पर माता पिता तद्वत् रक्षक न्याय और दयाका बर्त्ताव करनेवाले नियमों पर स्थित है, और आर्यों के लिये केवल यही बतलाते हैं कि वेदादि शास्त्रों के नियमों और शिक्षाओं के अतिरिक्त प्राचीन इतिहासों का सम्मान करें अर्थात् उस पर अमल करें । विशेष स्वार्थान्ध लोग जो चाहें सो कहें ॥

दशम समुल्लास की समालोचना

इस समुल्लास में महर्षि ने सदाचार और भक्ष्याभक्ष्य के योग्य वस्तुओं का वर्णन किया है और आरम्भ में इस विषय की समीक्षा की है कि जो लोग कहते हैं कि मैं निरीच्छ व निष्काम होजाऊं या हूं इस प्रकार का ढोंग रचकर संसारी विषयों में लिप्त रहते हैं, तत्पश्चात् उत्तम निकृष्ट कर्मों पर समालोचना करते हुये महर्षि ने आर्यावर्त्त में जो छूत छात का बखेड़ा लगरहा है, उसके मूलोच्छेद करने में गंभीर भावसे खण्डन किया है, और

बतलाया है कि खान पान के धर्म से केवल इतना ही सम्बन्ध होना चाहिये कि कोई वस्तु हानिकारक भोजन में न होवे। जो बुद्धि और मस्तिष्क को हानि पहुंचावे यथाः— "अभक्ष्याणि द्विजातीनाममेध्यप्रभवाणिच॥ मनु ५।५"

तथा "वर्जयेन्मधु मांसंच॥ मनु २।१७७" अर्थात् द्विज ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य को मलीन विष्टा मूत्रादि के संसर्ग से उत्पन्न हुये शाक फल मूलादि न खाना। जैसे अनेक प्रकार के मद्य-गांजा, भांग, अफ़ीम आदि और जो जो बुद्धि के नाश करने वाले पदार्थ हैं-उनका सेवन कभी न करै। और मांस भक्षण पर प्रबल विरोध प्रकट किया है, छूत छात का वर्णन करते हुये कहा है कि "यह काम सर्व्वथा निरर्थक और अनिष्ट कारक है केवल मद्य मांसाहारियों के हाथ का भोजन न करना इस लिये निषेध है कि कहीं यही अपराध आर्यों को भी मेल जोल होने के कारण से न लगजाय, इसी स्थान पृष्ठ २८४ में महर्षि लिखते हैं कि" परन्तु आपस में आर्य्यों का एक भोजन होने में कोई दोष नहीं दीखता जबतक एक मत एक हानि लाभ एक सुख दुःख परस्पर न मानै तब तक उन्नति होना बहुत कठिन है, परन्तु केवल खाना पीना ही एक होने से सुधार नहीं होसक्ता किन्तु जब तक बुरी बातें नहीं छोड़ते और अच्छी बातें नहीं करते तबतक बढ़ती के बदले हानि होती है" इस से स्पष्ट प्रकट है कि महर्षि की राय में यद्यपि आर्य्यों का खाना पीना परस्पर में एक होना उत्तम है, परन्तु साथ ही निकृष्ट कर्म्मों को त्याग करके उत्तम कर्म्मों का करना भी अत्युत्तम व प्रथम कर्त्तव्य है। इसी विषय की पुष्टि इसी पृष्ठ में प्रभाव शाली शब्दोंमें शिक्षा दीहै कि"विदेशियों के आर्य्यावर्त्त में राज्य होने का कारण आपस की फूट, मतभेद ब्रह्मचर्य्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना, पढ़ाना, बाल्यावस्था में अस्वयम्बर विवाह विषयाशक्ति मिथ्या भाषणादि, कुलक्षण, वेद विद्या का अप्रचार आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई २ लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पंचबन बैठता है"

देखिये ! ये बचन कैसे साधारण शब्दों में हैं परन्तु सत्यता किस प्रकार कूट २ कर भरी गई है, ऊपर बतलाया गया है कि केवल खान पान एक हो जाने से उन्नति नहीं हो सक्ती है वलिक अवनति ही होगी, जब तक कि उत्तम कर्मों का वर्त्ताव न होगा, इन विषयों में उन निकृष्ट कर्मों का वर्णन भी किया है, जो विशेषतः आर्यावर्त्त के निवासियों में पाये जाते हैं, और जिस कारण से कि आर्यावर्त्त में अन्य देशीय मनुष्यों का राज्य स्थापित हुआ है। क्यों कि यह सिद्ध है कि जब तक परस्पर का विरोध ही न हो तब तक तीसरा जन क्योंकर पंच ही बन सक्ता है। अगले शब्दों में और भी गम्भीरता और निष्कपटता का भाषण है कि "क्या तुम लोग महाभारत की बातें जो पांच हजार वर्ष के पहिले हुई थी उन को भी भूल गये देखो! महाभारत युद्ध में सब लोग लड़ाई में सवारियों पर खाते पीते थे, आपस की फूट से कौरव पांडव और यादवों का सत्यानाश हो गया सो तो हो गया परन्तु अब तक भी वही रोग पीछे लगा है। न जानें यह भयङ्कर राक्षस कभी छूटेगा वा आर्यों को सब सुखों से छुड़ाकर दुःख सागर में डुबा मारेगा। उसी दुष्ट दुर्योधन गोत्र हत्यारे स्वदेश विनाशक नीच के दुष्ट मार्ग में अब तक भी चलकर दुःख बढ़ा रहे हैं। परमेश्वर यह कृपा करे कि यह राज रोग हम आर्यों से नष्ट हो जाये"।

पाठको ! कौनसा राज रोगहै ? वही जिसके कारण दुर्योधन को महान अपयश का कलंक लगा है; और आर्य्यावर्त्त का सत्यानाश हुआ, अर्थात् आपसकी फूट, इसके उत्पत्ति का कारण, मतभेद, ब्रह्मचर्य्यका सेवन न करना, विद्या न पढ़ाना न पढ़ना, बाल्यावस्था में अस्वयम्वर विवाह विषयाशक्ति मिथ्याभाषणादि कुकर्म हैं, परन्तु इसकी महौषधि महर्षि केवल वेद विद्या का प्रचारही बतलाते हैं॥

सोचिये ! क्या इसमें कोई विद्रोहात्मक शिक्षा है ? अथवा क्या इसमें बृटिश गवर्मेंएट से कोई अराजकता का बर्ताव कियागया है, और क्या इसके द्वारा किसी प्रकार का विद्वेष प्रकट कियागया

है, कदापि नहीं ! इस स्थान पर विद्रोह, विद्वेष और अराजकता तो पृथक् रहा, बल्कि भारतवासियों को सचेत किया गया है कि जब तक तुम इन दूषित कर्मों को परित्याग न करोगे तबतक तुम्हारी उन्नति होही नहीं सक्ती । इसके अतिरिक्त आर्यसमाज का कथनहै कि यदि उपरोक्त दुर्गुणों से रहित होकर धर्मात्मा, सदाचारी, सौज्यनता और विद्वत्तायुक्त भारतवासी जिस समय हो जावेंगे तो " सुख सम्पति सब बिनहिं बुलाये । धर्म शील पहँ जाहिं सुभाये " के अनुसार उनको यह आवश्यकता कदापि न होगी कि गवर्मेण्ट से कुछ मांगें अथवा राजविद्रोह मचावें, बल्कि गवर्मेण्ट स्वयम् भारतवासियों की पूर्ण योग्यता देखकर उनके सम्पूर्ण स्वत्व प्रसन्नता पूर्वक प्रदान कर देवेगी, जिसके लिये गवर्मेण्ट स्पष्ट शब्दों में बार २ कह रही है, और इसही विषयको आज ३० वर्ष से आर्यसमाज लगातार कहता चला आरहा है कि अभी " **योग्य बनो** " योग्यता का फल स्वयम् शीघ्र प्राप्त होगा । (देखो सत्यधर्म प्रचारक का पिछला अंक) क्या ऐसी सभा या समाज के आश्रित लोगों से आशा की जासकती है कि वर्त्तमान आधुनिक आन्दोलन में योग दे सकेंगे (परन्तु हां पाश्चिमात्य शिक्षाओं के प्रभाव से भी आर्यसमाज को अबस होजाना पड़ताहै जैसा कि प्रथम प्रकरणमें वर्णन करआये हैं) अथवा उन्होंने किञ्चिन्मात्र भी योग दिया हो कदापि नहीं । इसके पश्चात् इस समुल्लास के शेष भागों में केवल यह बतलाया है कि लाभदायक पशुओं को कदापि न मारना चाहिये, हां हिंसक दुष्टजीवों को जो प्राणियों को पीड़ा देते हों उनको दण्ड देना चाहिये जो राजा और राज पुरुषों का काम है, परन्तु इनका मांस भक्षण कदापि न करै, और किसी का उच्छिष्ट (जूठा) भोजन करना उचित नहीं है ॥

एकादश समुल्लासकी समालोचना

यहां पूर्वार्द्ध समाप्त होकर उत्तरार्द्ध आरम्भ होता है, इसमें भारतवर्षीय मतमतान्तरों के झूंठे २ बाह्य आडम्बरों की प्रबल युक्ति पूर्वक समीक्षा कीगई है, पश्चात् अन्तिम भाग में ब्राह्मसमाज और प्रार्थना समाजके नियमों की समीक्षा

करते हुये पांच संख्याओं में समीक्षायें विभाजित कीगई हैं । अर्थात् स० १ से इनकी कुछ २ बातों को उत्तम सिद्ध किया और कुछ २ निकृष्ट व घृणित बातोंका भी वर्णन किया है । और संख्या २, ३ में उनकी रीति व व्यवहारादिके सम्बन्ध दूषित बतलाकर संख्या ४ में लिखा है कि " अंगरेज " यवन और अन्त्यज आदि से भी खाने, पीने का भेद नहीं रक्खा, उन्होंने यही समझा होगा कि खाने, पीने और जाति भेद तोड़ने से हम और हमारा देश सुधर जायगा परन्तु ऐसी बातों से सुधार तो कहां उल्टा बिगाड़ होता है—पृष्ठ ४०३ इससे स्पष्ट है कि संख्या १, २, ३ में जो समीक्षायें की गई हैं वह उन के इस विषय पर की गई हैं कि देश का सुधार खाने पीने और जाति भेद तोड़ने से ही हो सक्ता है । महर्षि यह प्रश्न उठाकर कि "ब्राह्मसमाज और प्रार्थना समाज तो अच्छा है वा नहीं" इस का उत्तर पृष्ठ ४०३ में लिखते हैं कि—

"विषय सर्वांश में अच्छे नहीं क्योंकि वेद विद्या हीन लोगों की कल्पना सर्वथा सत्य क्योंकर हो सक्ती है, जो कुछ ब्राह्मसमाज और प्रार्थना समाजियों ने ईसाई मत में मिलने से थोड़े मनुष्यों को बचाया और कुछ २ पाषाणादि मूर्त्ति पूजा को हटाया, अन्य जाल ग्रन्थों के फन्दों से भी कुछ बचाये इत्यादि अच्छी बातें हैं, परन्तु इन लोगों में स्वदेश भक्ति बहुत न्यून है । ईसाइयों के आचरण बहुत से लिये हैं— खान पान, विवाहादि के नियम भी बदल दिये हैं । २—अपने देश की प्रशंसा वा पूर्वजों की बड़ाई करनी तो दूर रही, उस के स्थान पर पेटभर निन्दा करते हैं, और व्याख्यानों में ईसाई आदि अंग्रेज़ों की प्रशंसा भर पेट करते हैं, ब्रह्मादि महर्षियों का नाम भी नहीं लेते प्रत्युत ऐसा कहते हैं कि बिना अंग्रेज़ों के सृष्टि में आज पर्यन्त कोई भी विद्वान् नहीं हुआ । आर्यावर्त्तीय लोग सदा से मूर्ख चले आये हैं इन की उन्नति कभी नहीं हुई" । मुझ को विश्वास है कि उक्त लेख पर हमारे विरोधीगणों ने अवश्य ही बिचारा होगा कि महर्षि ईसाई वा अंगरेज़ों की प्रशंसा करने से चिढ़ते थे, नहीं २ महर्षि का अभिप्राय इस प्रकार का कदापि न था,

इस स्थान पर उन का विचार यह है कि जो लोग अपने देश के सुधार करने में कटिबद्ध होवें, उन को यह उचित नहीं कि अपने पूर्वज ऋषि, महर्षियों की निन्दा वा अपमान सूचक शब्दों से घृणा और अन्य देशीय पुरुषों की व्यर्थ प्रशंसा करें, और ऐसा ही लोगों को सुझायें, क्यों कि अनाधिकार निन्दा वा स्तुति से देश का सुधार कदापि न होवेगा, बल्कि स्वार्थपने की कक्षा में सम्मिलित किया जावेगा, महर्षि अंगरेज़ो की अनाधिकार निन्दा व स्तुति कभी नहीं करते थे। ३—वेदादि कों की प्रतिष्ठा तो दूर रही परन्तु निन्दा करने से भी प्रथक् नहीं रहते ब्राह्मसमाज के उद्देश्य की पुस्तक में साधुओं की संख्या में "ईसा—मूसा—मुहम्मद—नानक और चैतन्य" लिखे हैं, किसी ऋषि, महर्षि का नाम भी नहीं लिखा है, इससे जाना जाता है कि इन लोगों ने जिन का नाम लिखा है उन्ही के मतानुसारी मत वाले हैं, भला जब आर्यावर्त्त में उत्पन्न हुये हैं और इसी देश का अन्न जल खाया, पिया अब भी खाते पीते हैं, अपने माता पिता, पितामहादि कों के मार्ग को छोड़ दूसरे विदेशी मतों पर झुक जाना ब्राह्मसमाजी और प्रार्थना समाजियों का एत द्देशस्थ संस्कृत विद्या से रहित अपने को विद्वान् प्रकाशित करना अंग्रेज़ी भाषा पढ़ के पंडिताभिमानी हो कर झटिति एक मत चलाने में प्रवृत्त होना मनुष्यों का स्थिर और वृद्धि कारक काम क्यों कर हो सक्ता था।

महर्षि ने और भी कई स्थानों पर लिखा है कि आर्यावर्त्त का सुधार केवल इसी प्रकार हो सक्ता है कि आर्यावर्त्त की प्राचीन वेद विद्या और वैदिक धर्म का पुनरुद्धार किया जावे जैसा कि पृष्ठ ४०६ में लिखा है कि "अब भी समझकर वेदादि के मान्य से देशोन्नति करने लगो तो भी अच्छा है" और यही ठीक भी है—क्योंकि प्रत्येक देशों की उन्नति विशेष इसी विषय पर निर्भर है कि उन के पूर्वज महात्माओं की जीवनी और कार्य्यवाहियों का स्मर्ण दिलाया जावे, विशेषतः आर्यावर्त्तीय जनों के लिये तो अतीव फल दायक है, न कि यहां के पूर्वज ऋषि, महर्षियों को बनचर

असभ्य आदि पदवियों से विभूषित कर और खान पान व जाति पांति मर्यादा के उल्लंघन करने में अथवा संस्कृत विद्याका तिरस्कार करके अंगरेज़ी भाषाके पण्डिताभिमानी होकर देश का सुधार हो जावैगा। क्या इस प्रकार के लोग आर्यावर्त्त के सुधारक कहे जा-सक्ते हैं कदापि नहीं, यहां पर यह विषय स्मरणीय रहे कि महर्षिने इस स्थान पर जो विचार प्रकट किया है, उससे यह कदापि नहीं सिद्ध होसक्ता कि उनका अभिप्राय केवल आर्यावर्त्त की ही उन्नति और भलाई पर निर्भर है, हां अतिरिक्त इसके कि संसार का उप-कार करने का बिचार स्वयम् उनकी अन्य पुस्तकें यथा "ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका" आदि यहां तक कि आर्यसमाज का छठा नियम "**संसारका उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना**" से सिद्ध है कि यदि अल्पकाल के लिये मान भी लिया जाय कि महर्षि विशेषतः आर्यावर्त्तही के सुधारक थे अन्य देशों के नहीं, तब भी तो कुछ दोष नहीं आसक्ता क्योंकि यह सांसारिक नियम है कि प्रथम सुधार अपनेही में करना पश्चात् अन्यों में, परन्तु एक चिट्ठी महर्षि ने अपने योग्य शिष्य पं० श्यामजी कृष्णवर्मा (लण्डन) को लिखी थी जिसका कुछ सारांश यह है कि "यदि अवकाश न मिला हो तो मैं सत्य हृदय से प्रेरणा करता हूं कि जब तुमको पठन, पाठन से अवकाश प्राप्त हो तबही वैदिक सिद्धान्त के प्रचारके निमित्त व्याख्यान देना और तबही यहां आना इसके पूर्व नहीं, क्योंकि इस प्रकारके यश का प्राप्त करना धन संग्रह करने से उत्तम है, न केवल यही परन्तु यह कल्याणकारी काम है। आज कल हमारे प्यारे प्रोफेसरों अर्थात् मोनियर विलियम्स (Monier Williams.) और मोक्षमूलर (Maxmuler) की वेद और अन्य शास्त्रों के विषय में क्या सम्मति है और अन्य लोग वेदादि शास्त्रों के अर्थ प्रचार करने के लिये कुछ भाव रखते हैं क्या यह सत्य है कि थियोसोफिकल सुसायटी ने लन्दन नगर में वैदिकीय शाखा स्थापित की है इत्यादि २" (देखो "उपोद्घात" श्रीमान् मास्टर

आत्माराम जी रचित) और इसके अतिरिक्त यह भी स्पष्ट कहा जा सक्ता है कि इस प्रकरण में महर्षि का अभिप्राय केवल ब्राह्मसमाज और प्रार्थना समाजियों को जोकि आर्यावर्त्त के सुधार का मिथ्या प्रलाप करते हैं उनके आचार, विचार पर निर्भर है। इस विषय को सिद्ध करने के लिये पृष्ठ ४०४, ४०५ में देखिये कि महर्षि अंगरेज़ों की बड़ाई से चिढ़ते न थे, बल्कि उनके उत्तम गुणों की सदा प्रशंसा किया करते थे देखिये इसके विषय में क्या लिखते हैं "यूरूपियनों में बाल्यावस्था में विवाह न करना, लड़का लड़की को विद्याकी सुशिक्षा करना, कराना, स्वयम्बर विवाह होना, बुरे २ आदमियों का उपदेश नहीं होना, वे विद्वान् होकर हर किसी के पाखण्डमें नहीं फँसते, जो कुछ करते हैं वह सब परस्पर विचार व सभा से निश्चित करके करते हैं, अपनी स्वजाति की उन्नति के लिये तन, मन, धन व्यय करते हैं, आलस्य को छोड़ उद्योग किया करते हैं देखो! अपने देशके बनेहुये जूते को कार्यालय (आफिस) और कचहरी में जाने देते हैं, इस देशी जूते को नहीं, इतनेही में समझलो कि अपने देशके बने जूतों का भी कितना मान, प्रतिष्ठा करते हैं उतना भी अन्य देशस्थ मनुष्योंका नहीं करते हैं देखो! कुछ सौवर्ष के ऊपर इस देशमें आये यूरूपियनों को हुये और आजतक ये लोग मोटे कपड़े आदि पहिरते हैं, जैसा कि स्वदेश में पहिरते थे परन्तु उन्होंने अपने देश का चाल चलन नहीं छोड़ा, और तुममें से बहुतसे लोगोंने उनका अनुकरण कर लिया इसीसे तुम निर्बुद्धि और वे बुद्धिमान् ठहरते हैं, अनुकरण करना किसी बुद्धिमान् का काम नहीं, और जो जिस काम पर रहता है उसको यथोचित करता है आज्ञानुवर्ती बराबर रहते हैं, अपने देशवालों को व्यापारादि में सहायता देते हैं इत्यादि २ गुणों और अच्छे २ कर्मों से उनकी उन्नति है। मुण्डे जूते कोट, पतलून, होटल में खाने पीने आदि साधारण और बुरे कामों से नहीं बड़े हैं-और इनमें जाति भेद भी है देखो! जब कोई यूरूपियन चाहे कितने बड़े अधिकार पर और प्रतिष्ठित हो किसी अन्य देश अन्य मतवालों की लड़की वा यूरूपियन की लड़की अन्य देश वाले से विवाह कर लेती हैं तो उसी समय उसका निमन्त्रण साथ

बैठ कर खाने और विवाह आदि अन्य लोग बन्द कर देते हैं—यह जाति भेद नहीं तो क्या ? आगे चलकर "स्वमन्तव्यामन्तव्य" पृष्ठ ६३२ में राजा व प्रजा का लक्षण बतलाते हुये लिखते हैं कि "१७ राजा" उसीको कहते हैं जो शुभ गुण कर्म स्वभावसे प्रकाशमान पक्षपात रहित, न्याय धर्मका सेवी, प्रजाओं में पितृवत् वर्त्ते और उनको पुत्रवत् मानके उनकी उन्नति और सुख बढ़ाने में सदा प्रयत्न किया करे"। "प्रजा" उसको कहते हैं जो पवित्र गुणकर्म स्वभाव को धारण करके पक्षपात रहित, न्यायधर्म के सेवन से राजा और प्रजा की उन्नति चाहती हुई राज विद्रोह रहित राजा के साथ पुत्रवत् वर्त्ते" ॥

आर्यसमाज के विरोधियो ! न्याय पूर्वक विचार कीजिये कि क्या उपरोक्त लेखों से सिद्ध हो सक्ता है कि महर्षि अंग्रेज़ों के उत्तम गुणों से भी चिढ़ते थे कदापि नहीं ! हां अवगुणों के विषय में तो निर्भय समालोचक थे, अंग्रेज़ क्या इन्द्रादि सरीखे पराक्रमी, वैभवशाली महानुभावों के सम्मुख अनाधिकार प्रशंसा व चाटुतावाद करने वाले न थे, क्योंकि उन्हों ने ६२७ पृष्ठ में लिखा है कि" मैं अपना मन्तव्य उसी को जानता हूं कि जो तीन कालमें सब को एकसा मानने योग्य है,; इसी से विचार लीजिये कि महर्षि किस स्वतन्त्रकक्षा के ईश्वर भक्त थे। राजा, प्रजा सम्बन्धी मन्तव्यों को देखकर कौन ऐसा निर्लज्ज, नीच कक्षा का मनुष्य होगा जो वज्र हृदय होकर कहसकेगा कि महर्षि व सत्यार्थ प्रकाश का आशय राजविद्रोहात्मक है। क्या अब भी विरोधियों को लज्जित होकर सिर झुकाना न पड़ेगा ! ॥

देखो विरोधियो ! अब भी अपनी नीचता को छोड़ो इसी एक दरबार में लल्लो चप्पो, झूठी सच्ची, बातों की चुगुली कर देने से ही तुम्हारा जीवन सार्थक नहीं हो सकेगा। वल्कि अभी एक सभी दरबारों का महा दर्बार महा प्रभु परमात्मा (खुदा बन्द करीम) के यहां धर्माधर्म की विवेचना होना ही अवशेष है, वहां

पर क्या उत्तर दे सकोगे जब कि कितनी पवित्र और उत्तम शिक्षा महर्षि दयानन्द ने निज रचित ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश द्वारा राजा, प्रजा के सम्बन्ध में लिखी है। शोक ! कि मत के विरोधता व स्वार्थपना के कारण ऐसी उत्तम बातें आर्यसमाज व सत्यार्थ प्रकाश में होते हुये भी हाय ! तुम ने बृटिश गवर्नमेण्ट को आर्यसमाज की ओर से भड़काने व राज विद्रोहात्मक सिद्ध करने की चेष्टा की है और कर रहे हो ! शर्म ! २

परन्तु क्या ही अच्छा हुआ कि पंजाब आर्य्य समाज का डिप्युटेशनने श्रीमान् महोदय **नव्वाब लेफ्टिनेंट गवरनर साहब बहादुर** पंजाब की सेवा में एक प्रति सत्यार्थ प्रकाश निवेदन पूर्वक अर्पण कर के सिद्ध किया गया है कि "आर्यसमाज राज विद्रोहात्मक सभा नहीं है" हर्ष का विषय है कि डिप्युटेशन से श्री मान् ने आदर व प्रसन्नता पूर्वक सम्भाषण किया था, आशा है कि अब वे स्वयम् सत्यार्थ प्रकाश का अवलोकन कर के निज स्वतन्त्र सम्मति प्रकाश करेंगे, और साथ ही राजा, प्रजा के बीच में वैमनस्य डालने वालों की कुटिल चाल पर विचार कर के तीस कोटि भारतीय का सहर्ष नाद पूर्वक आशीर्वाद ग्रहण करेंगे ॥

॥ इति ॥

इति आर्यसमाज व वर्त्तमान राजनैतिक और सत्यार्थ प्रकाश व राजविद्रोह विषयः समाप्तः ॥

तृतीय प्रकरण.

आर्यसमाज के गौरव पर विदेशीय व स्वदेशीय विद्वानों की

सम्मत्तियां.

(१) श्री मान् मि० बर्न साहिब बहादुर कमिश्नर मनुष्य गणना विभाग युक्त प्रान्त की सम्मति "युक्त प्रान्त मनुष्य गणना रिपोर्ट" से.

आर्यसमाजकाधार्मिक सिद्धान्त क्या है ।

श्री स्वामी दयानन्द सरस्वती जी महाराज की संक्षिप्त जीवनी लिखकर लेखक महाशय ने आर्यसमाजों के मुख्य २ सिद्धान्तों का संक्षेपतः वर्णन किया है वे लिखते हैं कि "आर्यसमाज वेदों को ईश्वरीय पुस्तक मानता है, परमेश्वर को अपने द्वितीय नियम के अनुसार सर्व व्यापक अनादि, अजन्मादि गुण युक्त बताता है तथा कहता है कि ईश्वर, जीव और प्रकृति अनादि हैं । और यह कि प्रत्येक मनुष्य को पुराणादिक ग्रन्थों को वेदाधीन समझते हुये पौरुषेय जानना चाहिये, स्तुति प्रार्थना और उपासना क्या है, पञ्च महायज्ञ की क्या विधि है, सोलह संस्कार क्या हैं इत्यादि" (पृष्ठ ८२) कर्म काण्ड की व्याख्या करते हुये अपने लेख के इस भाग को मि० बर्न साहिब बड़ी योग्यता से समाप्त करते हैं । सच तो यह है कि आर्यसमाज के मुख्य २ सिद्धान्तों का वर्णन ऐसी चतुराई से किया गया है कि

प्रत्येक धर्माभिलाषी बहुत कुछ आर्यसमाज के सिद्धान्त के विषय में इतने ही लेखमात्र से जान सक्ता है।

आर्यसमाज और उसके सामाजिक सिद्धांत

अपने लेख के दूसरे भागमें साहब बहादुर आर्यसमाज के सामाजिक उद्देश्य का वर्णन करते हैं-इस विषय के साथ में " दयानन्द ऐंग्लो वैदिक कालिज " का वर्णन करते हुये कांगड़ी-हरद्वार के " गुरुकुल " का वर्णन बड़ी योग्यता से करते हैं. वहां की पाठ प्रणाली क्या है, शिष्य लोग किस प्रकार किन नियमों को पालन करते हुये इसमें प्रवेश होसक्ते हैं. यह शिक्षण प्रणाली (INSTITUTION) किस प्रकार से अन्य पाठशालाओं से भिन्न है, इन सब बातों पर सर्वसाधारण को बताया गया है वर्न साहिब इस लेख के भाग सम्बन्ध में कहते हैं कि " आर्यलोग आर्यसमाज के छठवें तथा आठवें नियम का पालन करते हुये पुरुष तथा स्त्री दोनों जाति को शिक्षित बनाने के लिये विशेष बल देते हैं, जिसका परिणाम यह है कि यदि २० वा उससे अधिक अवस्था वाले प्रति १३ पुरुषों में केवल एक ऐसा पुरुष हिन्दू लोगों में बहुत कम पाया जाता है जो लिख पढ़ सक्ता है तो आर्यों में आधे आर्य पढ़ लिख सकने वाले पाये जाते हैं—वह यह भी कहते हैं कि आर्यसमाज के आधीन २० पाठशालायें पुत्रों के वास्ते और ४ लड़कियों के वास्ते खोली हुई हैं—तथा आर्यसमाज शिक्षितों का समुदाय है " (पृष्ठ ८४) निम्न व्योरेसे पाठकों को मालूम होगा कि इस प्रदेश में ईसाइयों को छोड़कर आर्यलोगों में शिक्षितों का समुदाय अधिक है। प्रत्येक दशहजार में शिक्षितों की संख्या हिन्दू २९७ मुसलमान २८२ जैन २२१३ आर्य २४२८ ईसाई ४१४० हैं। जिन लोगों ने इतिहासों का पाठ किया है और उन पर मनन किया है, वह इस बातको जानते होंगे कि उन २ मतों ने जिनमें अशिक्षितों का बल प्रवल रहा है, क्या २ हानियां देशको नहीं पहुँचाई हैं, हम इस बातको मुक्तकण्ठ से कहते हैं कि भारतमें यदि बृटिश राज्य का कोई समाज या सभा सहायक है तो **आर्यसमाज!** कारण क्या कि यह शिक्षितों का समुदाय है॥

आगे चलकर बर्न साहब लिखते हैं कि "आर्यसमाज बुद्धिकी नींव पर खड़ा हुआ है, और यह अपने समाज के प्रवर्त्तक स्वामी दयानन्द को एक उच्च कक्षाका उपदेष्टा मानता है, और कहता है कि वह मनुष्य सृष्टि में से थे, और पुनरागमन के बन्धनमें थे। यह वही बातें हैं जो आर्यसमाज को उन संशोधक मंडलियों से पृथक् करती हैं, विशेषतः इसकारण से कि अन्य सम्प्रदाय वाले अपने २ प्रवर्तकों को ईश्वर मानने लगे हैं" (पृष्ठ ८८) स्वामी दयानन्द महाराजका जिन लोगोंने जीवनचरित्र पढ़ा होगा वे जानते हैं कि वह आर्यसमाज लाहौर के अन्य सभासदों की नाईं एक सामान्य सभासद थे, और व्याख्यान देने के पश्चात् उसीही स्थान पर आनकर बैठा करते थे कि जहां पर अन्य सभासद व व्याख्याता गणों के बैठने का प्रबन्ध रहा करता था, कईबार उनको समाज में उच्चपद देने का और आचार्य बनाने का प्रस्ताव कियागया परन्तु उन्होंने सर्वदा इस प्रस्ताव का विरोधकिया, और कहा करते थे कि यही तो मूर्तिपूजा की जड़ है, और यही कारण है कि अन्य मतके प्रवर्त्तक व आचार्य लोग यथा वल्लभाचारी और इटली के पोप सरीखे लोग चेलों से बहु मान्य पाकर अपने २ मतोंको और भी घृणित करगये ॥

आर्यसमाज की स्थिति अर्थात् Position पोज़ीशन

बर्न साहब लिखते हैं कि बहुतसे पादरियों का यह पक्ष है कि आर्यसमाज बहुत अंश में ईसाइयों के उपदेश का परिणाम है, इस विषय की मीमांसा करते हुये साहब बहादुर लिखते हैं कि "यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि आर्यों का यह पक्ष नहीं है कि उन्होंने कोई नया मत वा धर्म स्थापित किया है! वे कहते हैं कि उन्होंने अपवित्र मेल को जो उनके प्राचीन धर्म में (जो सृष्टि की आदि से सनातन रूप चला आता है) समय पाकर होगया था केवल दूर किया है" (पृष्ठ ८८) इसही सम्बन्ध में बहुत स्पष्ट रूपसे पादरियों के उक्तपक्ष का खण्डन करते हुये साहब बहादुर कहते हैं कि "इसमें कोई असम्भव नहीं है कि ईसाई मतका आर्यसमाज के सिद्धान्तों पर प्रभाव पड़ा—परन्तु स्पष्ट रूपसे इस बातको प्रकट

करना आवश्यकीय है कि यह प्रभाव किस प्रकार का है " (पृष्ठ ८९) इस प्रश्न के उत्तर में बर्न साहब यों लिखते हैं कि " जिस प्रकार कबीर के मतकी उत्पत्ति यवनों के आक्रमण से है इसी प्रकार आर्य-समाज का प्रादुर्भाव ईसाई मतके भारतमें प्रचलित होने से है—ईसाई मतकी सामयिक सफलता ने लोगों को अपने सिद्धांत, कर्म, सामाजिक विचारोंके यौक्तिक प्रयोजन जानने के लिये अवश्य उद्यत किया हो, परन्तु मुझे कोई भी चिन्ह इस बातका नहीं मिलता कि आर्यों ने कोई सिद्धांत इनसे लिये हों वा नक़ल किये हों जैसा कि अन्य संशोधक मंडलियों में पाया जाता है, यह लक्ष्य ब्राह्मसमाज की ओर प्रतीत होता है—इसके प्रतिकूल सच तो यह है कि आर्य लोग ईसाई मतकी पुस्तकोंको अपने प्रतिपक्षी की पुस्तक जानकर मनन व पठन किया करते हैं, इनकी स्थिति उनकी ओर खण्डन करनेवालों कीसी है न कि उनके स्वप्रिय सिद्धांतों को अपनी ओर मिलानेवालों की " (पृष्ठ ८९) ॥

बर्न साहब लिखते हैं कि " यह बात कि युक्त प्रदेश में आर्य लोग गतवर्षके बीचमें तिगुने बढ़गये हैं और पंजाब देश में प्रति सैकड़ा ५० अधिक हुये इस बातका पूर्ण प्रमाण है कि आर्यसमाज में जीवनशक्ति विद्यमान है, जिसका कारण ढूंढ़ना कोई कठिन कार्य नहीं है " (पृष्ठ ९०)

"आर्यसमाज का केवल एक ईश्वरकी ही उपासना करने का एक पवित्र उपदेश विशेषतः शिक्षित समुदाय के लिये एक आकर्षण शक्ति रखता है, यद्यपि गतवर्षों की परीक्षा और व्यौहार ज्ञानसे यह बात प्रकट है कि सर्वसाधारण समुदाय भी इस प्रकारके सिद्धांतसे आकर्षित होरहे हैं, इसके अतिरिक्त ईश्वरीय धर्मपुस्तक में विश्वास रखने का सिद्धांत सर्वसाधारण के लिये जिनको कोई भी शांति ब्राह्मो स्कूलके वैज्ञानिक वा सर्वत्र सिद्धांतों से नहीं होती है एक प्रिय और श्रेयस्कर सिद्धान्त है, तथापि मुझ को आर्यों के इतिहास और सिद्धान्तों में कोई भी बात पादरियों के इस पक्ष की पुष्टि में नहीं मिल सकी कि सब आर्य लोग ईसाई धर्म को स्वीकार कर लेवेंगे,

क्यों कि हिन्दुओं का मत मुर्दामत है इसी प्रमाण शून्य प्रतिज्ञा पर इस पक्ष का आश्रय है, परन्तु इस विचार का विरोध बहुत प्रबल रूप से लायल साहब ने किया है, आर्यसमाज का मत शिक्षित हिन्दुओं से इस बात की अपील करता है कि वह अपना वैदिक विज्ञान को अवलम्बन करें—जब कि हिन्दू लोग अपने मत की उत्कर्षता पर विश्वास रखते हुये ईसाई मत की ओर उदासीन वृत्ति से देखते हैं, आर्यसमाज की स्थिति इन की ओर एक दृढ़ विपक्षी की स्थिति है, और इस का विशेष बल इस ओर लग रहा है कि उन लोगों को जो ईसाई या मुसलमान हो गये हैं फिर से शुद्धकर कर के अपने में मिलावें इन प्रमाणों से मुझ को विदित होता है कि इस में वह अंश विद्यमान है जो किसी धार्मिक सुसाइटी में सफलता प्राप्त करने के लिये होना चाहिये" (पृष्ठ वही ६०)

पाठको ! आर्यसमाज की भावी क्या है इस पर आपने स विस्तर सप्रमाण विचार एक विदेशीय विद्वान् का इतने लेख से जान लिया होगा । अब इस विषयमें अधिक लिखना हम व्यर्थ समझते हैं । आगे अब हम मि० बर्न साहब के लेखानुसार यह सिद्ध करने के लिये तत्पर होते हैं कि, आर्य समाज व० राजनैतिक सभा नहीं है ।

क्या आर्यसमाज पोलीटीकल सभा है ।

आर्य समाज के उपदेश को रोकने के लिये विपक्षियों ने क्या २ असभ्य और अमानुषी कार्य इस देश में नहीं किये हैं ? क्या उपदेशक लोगों पर असभ्य शब्दों की वर्षा नहीं की गई है—और उन को शारीरक कष्ट नहीं पहुंचाये गये हैं ? क्या आर्य समाज के उपदेश रोकने के लिये स्थान तक नहीं मिलने देने में कोई त्रुटि उन्हों ने कभी छोड़ी है ? नहीं २ केवल यही नहीं, क्या आर्य समाज के धर्मवीर पं० लेखराम जैसे महान् पुरुष के प्राण तक इन्हों ने नहीं लिये ? जब आप लोगों के पास इन लोगों के इन २ घृणित व्यवहारों के ऐसे अमानुषी

दृष्टान्त विद्यमान हैं—तो क्या अचम्भे की बात है कि आर्य समाज के सिर पर इस बात का दोष मढ़ा जाये कि यह समाज **पोलिटिकल व राजद्रोही** समाज है—आर्य समाज का साहित्य और आर्य समाज की राजभक्ति इस विषय का पर्याप्त प्रमाण है कि आर्य समाज पर यह दोष लगाना कैसा थोथला दोष है, इस विषय में आर्य समाज अपने विपक्षियों का मुख मर्दन करने के लिये और अपनी पोज़ीशन साफ जताने के लिये समय २ पर जब कभी आवश्यकता हुई उत्तर देता रहा है। परन्तु अब हम को आवश्यकता नहीं रही है कि अब हम अपनी सफाई के प्रमाण में अपनी ओर से कुछ कहें, क्या ही अच्छी बात है कि एक राजकीय विदेशीय उच्च पदाधिकारी मि० **बर्न** इस रिपोर्ट † के रचयिता ही की उचित साक्षी हमारे लिये सब कुछ इस विषय में पर्याप्त है। बर्न साहब लिखते हैं कि आर्यों पर इस दोष (ब० राजनैतिक) के मढ़े जाने का मूल कारण यह है कि "स्वामी दयानन्द सरस्वती गोरक्षा के एक दृढ़ सहायक थे और इस विषय की पुष्टि में उन्हों ने **गोकरुणानिधि** नाम की पुस्तक लिखी थी, ईसाइयों तथा हिन्दुओं का विपक्षी होना भी इस दोष को दृढ़ करने में एक हेतु है" (पृष्ठ ६१) परन्तु साहब बहादुर इस विचार से किसी अंश में भी सहमत नहीं हैं, वह अपना विचार इन शब्दों में लिखते हैं कि "वस्तुतः उक्त पुस्तक का कुछ फल यह हुआ कि उस आन्दोलन को (जिस का परिणाम दस वर्ष हुये प्रथम के कुछ वर्षों तक शोचनीय घटनाओं से युक्त रहा) प्रज्वलित किया—तथापि यह बात स्मरण रखनी कि गौ आर्यों के लिये पवित्र पशु नहीं है और दयानन्द सरस्वती की पुस्तक इस सिद्धान्त पर स्थिति है कि चौपायों का हनन करना सांसारिक लाभों को लक्ष्य में रख कर एक सांसारिक भूल है और इस कारण से आपत्ति जनक और विवादोत्पादक है मेरा विचार है कि इस पुस्तक का लिखा जाना देश की सामयिक दशा और व्यवहार के प्रतिकूल कोई आन्दोलन आरम्भ करने की इच्छा से

† Census of India 1901. Report. By R. Burn. I. C. S.

न था वरन उन कट्टर हिन्दुओं को जिन्हों ने उन के सिद्धान्तों के विपरीत घोर विवाद प्रकट किया ही था शान्ति पूर्वक अपने के साथ ऐक्यता का व्यवहार करने कराने का था, आर्य धर्म के १० वें नियम से जो निम्न लिखित अनुसार है इस विचार की पुष्टि होती है, "सब मनुष्यों को सामाजिक सर्व हितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिये और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें" (पृष्ठ ६१)

"इस प्रकार का अनियमित नियम वस्तुतः बहुत ही स्वतन्त्रता जनक है और प्रत्येक सभासद् इस प्रदेश में तथा अन्य प्रदेशों में (गो रक्षणी सभा की) सहायता करते हुये इस नियम से पूरा २ लाभ उठाता है, मेरा लक्ष्य इस इतने लेख में यह है कि इस आन्दोलन के सहायक यह लोग केवल इस कारण से हुये कि उन को यह विश्वास कराना था कि उन के धार्मिक सिद्धान्त हिन्दुओं के एक दृढ़ और प्रचंड धार्मिक विचार के प्रतिकूल नहीं हैं । तथा मुझे यह भी जताना है कि केवल एक मात्र यही दृष्टान्त इस विषय की पुष्टि का पर्याप्त प्रमाण नहीं है कि यह सब समय और धन जो कि यह लोग केवल धार्मिक और सामाजिक कार्यों के लिये व्यय करते हैं केवल छल और कपट रूप है, और वस्तुतः यह पोलिटिकल आन्दोलन पर उतारू हुये जान पड़ते हैं, यह सत्य है कि "आर्य लोग भावी पोलिटिशियन् हैं"—परन्तु यह बात अत्यन्त ही संदिग्ध और कल्पना मात्र है कि आर्य होना उन के भावी पोलिटिशियन् होने में हेतु है, अन्त में हम यह कहे बिना नहीं रह सक्ते कि आर्य लोग उस ही प्रकार से हिन्दुओं के मत का भी खण्डन करते हैं जिस रीति पर ईसाइयों के । और यही कारण है कि कट्टर हिन्दू लोग यह दोष उन पर मढ़ते हैं—उन सामाजिक सिद्धान्तों के अतिरिक्त जिन का ऊपर वर्णन किया है कोई भिन्न लौकिक उद्देश्य यदि इन लोगों का है तो सचमुच यह असाधारण अनोखी बात है कि वह प्रकाश में नहीं आई" (पृष्ठ ६२)

पाठको ! इस से कोई विशेष सयौक्तिक और सप्रमाणिक

साक्षी देने की आवश्यकता रही है जो आरोपित कलंक के दूर करनेके लिये पर्याप्त हो ? बर्न जैसे विदेशीय उच्चाधिकारी की साक्षी, आशा है कि लोगों को उसघोर और भयङ्कर भूल से बचायेगी जिस में कि कुछ लोग अब तक डूब रहे हैं, जो दुरात्मा अपने आत्मा का हनन करते हुये आर्य समाज पर इस कलंक का टीका लगाने को उद्यत हुये हैं उन के लिये तो यह लेख किसी प्रकार भी लाभ दायक नहीं हो सक्ता, परन्तु हां वह लोग जो कि मिथ्यापवाद सुन २ कर आर्य समाज की ओर बुरी दृष्टि से देख रहे हैं, वह अवश्य इस से लाभ उठायेंगे। विशेष कर सरकारी कर्मचारियों के लिये तो यह लेख अमृत फल का देने वाला है, अब कोई रुकावट ऐसी नहीं मालुम होती कि जिस से वह लोग अपने आप को आर्य कहने तक से सङ्कोच वा आर्य समाज के मैदान में काम करने से पीछे हटें बर्न साहब ने इस अंश में आर्य समाज की जो अद्वितीय सेवा की है उस के लिये विशेष धन्यवाद के पात्र हैं, परमात्मा उन की वृद्धि करै॥

॥ इति ॥

(२) † अमेरिका के परम विद्वान् एण्ड्रो जैक्सन डेविस की सम्मति

मुझे एक आग दिखाई पड़ती है, जो कि सर्वत्र फैली हुई है, अर्थात् असीम प्रेम की आग जो कि द्वेष की जलाने वाली है, और प्रत्येक वस्तु को जलाकर शुद्ध कर रही है, अमेरिका के शीतल मैदानों, अफ़रिका के विस्तृत देशों, एशिया के प्राचीन पर्वतों, और यूरोप के विशाल राज्यों पर मुझे इस सब को जलाने वाली और सब को इकट्ठा करने वाली आग की ज्वालायें दिखाई देती हैं। इस की चर्चा निम्नस्थ देशों से उठी है, अपने सुख और उन्नति के लिये इसे मनुष्य ने स्वयं प्रज्वलित किया है, पृथ्वी पर मनुष्य ही एक ऐसी व्यक्ति है जो आग को जलाकर उसे स्थायी बना सक्ता

† देखो बी. एण्ड दी वेली पृष्ठ ३८३ एण्ड्रो जैक्सन डेविस रचित

है जो कि पार्थिव सृष्टि में बागीश (नातिक) भी यही है, अतएव अपने घरों में नारकीय अग्नि भड़काने में सब से प्रथम है—हां प्रौमीथस की तरह नारकीय घरों को प्रेम से पवित्र और बुद्धि से प्रकाशित करने वाले ईश्वरीय अग्नि लाने के लिये भी यही अग्रसर है। इस अपरिमित अग्नि को देख कर जो निस्सन्देह राज्यों सम्राज्यों और संसार भर के प्रबन्ध और नीति के दोषों को पिघला डालेगी, मैं अत्यन्त आनन्दित हो कर एक उत्साह मय जीवन व्यतीत कर रहा हूं। सब ऊंचे २ पहाड़ जल उठेंगे, घाटियों के रमणीय नगर भुन जायंगे, प्यारे घर और प्रेम पूर्ण हृदय साथ २ पिघलेंगे, पाप पुण्य संयुक्त होकर यों अन्तर्हित होंगे, जैसे सूर्य की सुनहरी किरणों में ओस; असीम उन्नति की विद्युत से मनुष्य का हृदय हिल रहा है, आज उस की केवल चिनगारियां आकाश की ओर उड़ती हैं वक्ताओं, कवियों और ग्रन्थ निर्म्मोताओं की शिक्षाओं में इधर उधर ज्वालायें दीख पड़ती हैं। यह आग **सनातन आर्य धर्म** को स्वाभाविक पवित्र दशा में लाने के लिये एक भट्टी में थी जिसे **आर्य समाज** कहते हैं। यह आग भारत वर्ष के परम योगी **दयानन्द सरस्वती** के हृदय में प्रकाश मान हुई थी, हिन्दू और मुसलमान इस प्रचण्ड अग्नि को बुझाने के लिये चारों ओर बेग से दौड़े, परन्तु यह आग ऐसे वेग से बढ़ती गई कि जिस का इस के प्रकाशक दयानन्द को ध्यान भी न था। और ईसाइयों ने भी जिन के धर्म की आग और पवित्र दीपक पहिले पूर्व ही में प्रकाशित हुये थे एशिया के इस नये प्रकाश को बुझाने में हिन्दू और मुसलमानों का साथ दिया, परन्तु यह ईश्वरीय आग और भी भड़क उठी और सर्वत्र फैल गई। सम्पूर्ण दोषों का संघट्ट नित्य की शुद्ध करने वाली भट्टी में जल कर भस्म हो जावैगा, यहां तक कि रोग के स्थान पर आरोग्यता, झूठे विश्वास की जगह तर्क, पाप के स्थान पर पुण्य, अविद्या की जगह विज्ञान, द्वेष की जगह मित्रता, बैर की जगह समता, नर्क के स्थान में स्वर्ग, दुःख के स्थान में सुख, भूत प्रेतों के स्थान में परमेश्वर और प्रकृति का राज्य हो

जायगा। मैं इस अग्नि को मांगलिक समझता हूं † जब यह अग्नि सुन्दर पृथ्वी को नव जीवन प्रदान करेगी तो सार्वत्रिक सुख, अभ्युदय और आनन्द का युग आरम्भ होगा " ॥

(३) श्री मान् प्रसिद्ध प्रोफेसर मौनियर विलयम्स महाशय की अक्सफोर्ड से सम्मति ॥

Sanskrit as a Living Language

Oxford, October, 1880.

Few are aware of the extent to which Sanskrit is at present used as a medium of conversation and correspondence in India, and of its extreme convenience when employed as a kind of linguafra lingua franca among learned men in a country where there may be no affinity between the spoken vernaculars, or not sufficient affinity to make two persons living in adjacent districts mutually intelligible. Mr. Cust has shown that about two hundred languages dialects are spoken by the inhabitants of our Indian empire. What a barrier would this variety of speech be to the interchange of

---

† पाठको ! इस विदेशीय अमेरिकन विद्वान् की सम्मति में यह शब्द कि "मैं इस अग्नि को मांगलिक समझता हूँ" अहह ! कैसी विशाल बुद्धि का परिचय दिया है। परन्तु शोक ! कि हमारे नव शिक्षित एंग्लो इन्डियन शासक गण उन नीच, कपटी चुगलखोरों की चुगुली व आर्य समाज की झूठी २ शिकायत ही सुनना परम मांगलिक समझे हैं।

अनुवादक.

ideas were it not for the universal employment of Sanskrit and Hindustani as vehicles of intellectual intercourse by the educated classes in parts of the country ! Sanskrit is supposed to be dead and often called a dead language; but can any language be pronounced devoid of life which still lives and breathes in daily thought and daily speech, which still animates and inspires daily correspondence and which still exerts a living influence over literature, science; and religion from the Hindukush to Ceylon ?

The readers of the Athenaeum may remember that about a year ago I announced the arrival in this country of a young Hindu of the Kshatriya caste, named Syamaji Krishna Varma, whose knowledge of Sanskrit and power of speaking and writing that language were so great that the title of Pandit had already been accorded to him. I also mentioned that he had the advantage of the instruction of a remarkable person who is not only profoundly versed in ancient Sanskrit literature but is now causing considerable stir in Indian religious circles by denouncing polytheism, Pantheism, and idolatry, and preaching pure monotheism as the only true religion of the Aryan race founded on the Veda.

The name of this rising religious reformer Dayananda Sarswati Swami. He is an eloquent speaker and writer of Sanskrit, as I can myself testify; for when I was at Bombay I heard him deliver a Sermon with great earnestness and fluency, before an attentive congregation of the Aryasamaj, on the original religion

of the Aryas. He has lately written a letter in Sanskrit to his pupil now a member of "Balliol College Oxford" which with the permission of the addressee, I here translate:—

"May the benediction of Dayananda Saraswati Swami rest upon Syamaji Krishna Varma, who deserves all commendation for his learning and his perseverance in the path of Vedic religion &c.

I am sorry you have not cheered me for some time by a letter. I now write hoping you will rejoice my heart by replying to the following questions:— " What sort of men are there in England ? What are their characteristic qualities, dispositions and actions ? what is the nature of the land, water, and air there ? what kind of eatables, solid and liquid, and what things are fit for licking and sucking (lehya, chushya) can be had there ? Have you been in good health ever since you left this country ? Is the object of your visit to England being accomplished every day ? How many men read Sanskrit with you and what books do they study ? What is your monthly income, and what are your expenses ? What time have you for study, for teaching, and for meditating ? How is it that your fame for discoursing on the doctrines of the true religion has not spread so rapidly in England as it formerly did here in different parts of India ? Perhaps you have already acquired a reputation without our having heard of it, being at a long distance from you; or perhaps yoū have had no leisure. If that be the case, it is my earnest recommendation that as soon

as you have finished reading and teaching (parhna, parhana), you should deliver addresses for the propagation of vedic doctrines and then return here, but not before; for a good reputation so acquired is preferable to making money, nay, it confers a great blessing (Siva-karah) what is the present opinion for our beloved professors " Monier William and Mox Muller " (Mokshamalar) about the vedas and other Sastras ? Have they and othres ony regard for the disremination of the meaming of those works (Tadartha-pracharaya) ? Is it a fact that the Theosophical Society has established a Vedic branch (Vaidiki sakha) in London (Nand Nagra, the city of joy) ? Have you ever seen Her majesty, the great Queen Empress of India ? Have you seen the assemoly called Parliament (Parliament Akhya Sabha) ? " Please to answer these questions as soon as you can and write to me at length about other topics which you may think worth mentioning. This will suffice for the present, as it is not necessary to write long letters to the intelligent. Written on Tuesday the Sixth day of the white half of the month Ashadha of the *Sanvat* year measured by the earth the numerical symbols the Ramas and the sages (1937—A. D. 1880) "

The above letter is well and clearly written in pure classical Sanskrit. I canstantlv receive similar Sanskrit letters from learned Hindus who live in countries as widely separated and distinct from each other as Cashmere and Travancore. The specimen translated is valuable for other purposes than a mere illustration of

the fact that the educated classes of India use Sanskrit as a medium of communication. It affords an insight into the ideas that prevail among learned natives and thoughtful religious reformers in regard to the condition of the country under whose rule they ary able to pursue their studies or propagate their reforming opinions in peace and Security. I may note for the benefit of those who were interested in the controversy as to the proper translation of the title " Empress of India " that the expression employed by Dayananda is " Rajarajesvari "

MONIER WILLIAMS.

उक्त अंगरेज़ी का अनुवाद यहहै:—

" संस्कृत जीवित जाग्रत भाषाहै "

जब कि भारतवर्ष के नाना प्रान्तों की भाषायें एक दूसरे से सर्वथा न मिलें अथवा बहुत कम मिलती हों और ऐसा होने पर निकटवर्त्ती नगरों के दो पुरुष भी एक दूसरे की बात भलीप्रकार न समझ सके हों तो यह बात बहुत थोड़े मनुष्य जानते होंगे कि संस्कृत आजकल बोलचाल और लिखने पढ़नेका भारतवर्ष में भारी साधन है और पंडित लोगोंको इससे बड़ी सुगमता परस्पर व्यवहार के लिये मिलती है और वे इसको एक प्रकारकी सामाजिक सार्वभौमिक भाषा समझते हैं। मि० कस्ट ने दर्साया है कि हमारे भारतवर्ष के राज्य में लगभग २०० भाषायें अपनी शाखा सहित प्रचलित हैं। यदि भारतवर्ष देशके सर्व स्थानी विद्वान् लोग संस्कृत और हिन्दुस्तानी से काम न लेते तो इतनी भाषाओंकी विद्यमानता पर उनको परस्पर भाव प्रकट करने भी कठिन होजाते । कल्पना कीजाती है कि संस्कृत मृत् भाषा है और बहुधा मृत् भाषा कहलाती है-परन्तु क्या वह भाषा जो प्रतिदिनके भावों और बोलचाल में जीवित जाग्रत

रूपसे विद्यमान हो, जिसके द्वाराही प्रतिदिन पत्रव्यवहार किये जायं—और जिसका जीवित प्रभाव साहित्य, शास्त्र और धर्म पर हिन्दुकुश पहाड़से लेकर लंका द्वीप पर्यंत हो, कभी निर्जीव कहला सक्ती है॥

"अर्थानियम" पत्र के पाठकों को स्मरण होगा कि गत वर्ष मैंने सूचना दी थी कि इङ्गलैण्ड में एक हिन्दू युवा पुरुष क्षत्रिय वर्ण का जिस का नाम **श्यामजी कृष्ण वर्म्मा** है, और जिसकी संस्कृत विद्या में विद्वत्ता और संस्कृत में वक्तृता करने तथा लेख लिखने की योग्यता ऐसी महान् है कि उस को **पण्डित** की पदवी दी जा चुकी है, आया है। मैंने यह भी वर्णन किया था कि इस ने सौभाग्यता से एक महान् पुरुष से शिक्षा भी ग्रहण की है जो महान् पुरुष न केवल प्राचीन संस्कृत साहित्य में पूर्ण विज्ञ है वरन आज कल भारत वर्ष के सर्व मत मतान्तरों में अनेक ईश्वर पूजन, मायावाद और मूर्तिपूजन का खण्डन करने और इस बात के मण्डन करने से कि आर्य जाति का एक मात्र सच्चा धर्म वेदोक्त, एक ईश्वरकी उपासना करनाहै और उसकी भारी चर्चा फैलरही है। इस नये धार्मिक रिफ़ार्मर (आचार्य) का नाम **स्वामी दयानन्द सरस्वती** है। मैं अपनी साक्षी से कह सक्ता हूं कि स्वामी दयानन्द सरस्वती संस्कृत के प्रभाव शाली वक्ता और लेखक हैं। जब मैं बम्बई में था तो मैंने इन को बड़ी धार्मिक वृत्ति और उत्तमता से आर्य समाज के लोगों के मध्य में जो ध्यान पूर्वक श्रवण कर रहे थे आर्यों के प्राचीन धर्म के विषय में उपदेश देते हुये सुना था। आज कल ही इन का एक पत्र संस्कृत में इन के शिष्य के नाम आया है जो कि आज कल **बेलिअल कालिज औक्स फोर्ड** का एक मेम्बर है और उस की आज्ञा पूर्वक मैं उस पत्र का अनुवाद नीचे लिखता हूं :—

"श्याम जी कृष्ण वर्म्मा को जो कि अपनी विद्या और वैदिक धर्म के मार्ग में दृढ़ता के कारण प्रशंसा के योग्य है—दयानन्द सर-

स्वती स्वामी का आशीर्वाद पहुंचै। मैं शोक करता हूं कि कुछ काल से तुम ने पत्र भेजकर मुझे आनन्दित नहीं किया। अब मैं इस आशय से पत्र लिखता हूं कि तुम इस का उत्तर देकर मेरे मन को प्रसन्न करोगे। इंगलेण्ड के लोग किस प्रकार के हैं, उन के विशेष गुण स्वभाव और कर्म क्या हैं, वहां का जल स्थल और वायु कैसा है ? खाने, पीने, चूसने चाटने के योग्य कौन से पदार्थ वहां मिल सक्ते हैं ? जब से तुम ने यह देश छोड़ा है तब से तुम्हारा शरीर तो आरोग्य रहता है ? क्या उस प्रयोजन में तुम को प्रतिदिन सफलता प्राप्त होती है ? जिस के लिये कि तुम इंगलेण्ड की यात्रा को आये हो कितने मनुष्य तुम से संस्कृत पढ़ते हैं और किन २ पुस्तकों का वे पाठ करते हैं तुम्हारा मासिक आय और व्यय कितना है ? किस २ समय तुम स्वयम् पढ़ते पढ़ाते और उपासना करते हो ? सत्य धर्म के सिद्धान्तों पर व्याख्यान देने से जो तुम्हारा यश इंगलेण्ड में शीघ्र फैलाना चाहिये था जैसा कि भारत वर्ष के नाना स्थलों पर फैल चुका है उस के न फैलने का क्या कारण है ? कदाचित तुम्हारी कीर्त्ति फैल रही हो और हम को उस की सूचना न मिली हो इस कारण कि हम तुम से दूरी पर हैं, अथवा यह कि तुम को अवकाश ही न मिला हो। यदि अवकाश न मिला हो तो मैं सत्य हृदय से प्रेरणा करता हूं कि जब तुम को पठन पाठन से अवकाश मिले तबही **वैदिक सिद्धान्तों के प्रचार के निमित्त व्याख्याम देना और तब ही यहां आना इस से पूर्व नहीं।** क्योंकि इस प्रकार के यश का प्राप्त करना धन संग्रह करने से उत्तम है। न केवल यही परन्तु यह कल्याण कारी काम है। आज कल हमारे प्यारे प्रोफ़ेसरों अर्थात् मोनियर विलयम्स और मोक्षमूलर की वेद और अन्य शास्त्रों के विषय में क्या सम्मति है ? क्या यह और अन्य लोग वेदादि शास्त्रों के अर्थ प्रचार करने में कुछ भाव रखते हैं ? क्या यह सत्य है कि थियासोफिकल सुसायटी ने लन्दन नगर में वैदिकीय शाखा स्थापित की है ? क्या तुम कभी श्री मती भारत राज राजेश्वरी से मिले हो ? क्या तुम ने कभी पार्लीमेण्ट नामी सभा देखी है ? कृपा

कर के शीघ्र ही इन प्रश्नों के उत्तर देना और अन्य विषयों पर विस्तार पूर्वक लिखना जिन को कि तुम वर्णन के योग्य समझो। इस समय इतना लेख ही पुष्कल है, क्योंकि विचार शीलों को विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं।

मंगलवार आषाढ़ शुक्ल ६ सम्वत् १९३७
(तदानुसार सन् १८८०)

उक्त पत्र उत्तम है और शुद्ध प्राचीन संस्कृत की शैली में स्पष्ट लिखा हुआ है। इसी प्रकार के मुझे नित्य प्रति संस्कृत के पत्र विद्वान् हिन्दुओं से आते रहते हैं जो भिन्न २ प्रान्तों में रहते हैं जिन की दूरी इतनी होती है जितना कि काशमीर और ट्रावन् कोर एक दूसरे से दूर है। इस अनुवाद से न केवल यही दृष्टान्त मिलता है कि भारत वर्ष के पण्डित लोग पत्र व्यवहार संस्कृत ही में करते हैं-परंच इससे अन्य बातें भी विदित होती हैं। इस से भारत के विद्वान् और बुद्धिमान् धार्म्मिक रिफ़ारमरों के अन्तरीय भावों का इंगलैण्ड के विषय में पता लगता है, जिस के राज्य प्रबन्ध में वे लोग शान्ति पूर्व्वक निर्विघ्न रीति से पुस्तकों को पढ़ते और सुधार बिषयक प्रचार करते हैं जो लोग इस संवाद में दत्त चित्त थे कि "**एम्प्रेस आफ़ इंडिया**" का यथार्थ अनुबाद क्या है उन के लाभ के लिये मैं यह भी दर्साना चाहता हूं कि "दयानन्द" ने "**राजराजेश्वरी**" का प्रयोग लिखा है॥

स्थान ओक्सफोर्ड } भवदीय
अक्टूबर १८८० ई० } मोनियर विलियम्स.

इस के अतिरिक्त उक्त प्रोफ़ेसर (मोनियर विलियम्स) महाशय अपनी पुस्तक "ब्राह्मण मत और हिन्दूमत" के पृष्ठ २२६ में स्वामी दयानन्द महाराज का कुछ वृत्तान्त लिखते हुये लिखा है कि "इस स्थल पर उस ने राजयोग में सिद्ध प्राप्त की फिर वह एक नये समुदाय का जिस का नाम आर्य समाज है आचार्य हुआ"

फिर लिखते हैं कि "ब्रह्म प्राप्ति के लिये और बार २ जन्म मरण के दुख से छूटने के लिये उस ने विवाह न करने और त्यागी होने का दृढ़ संकल्प धारण कर लिया" महर्षि दयानन्द के मुख्य अभिप्राय का वर्णन प्रोफ़ेसर महाशय उक्त पुस्तक में यों लिखते हैं कि **"इस की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य वेद के एक ब्रह्म के माने हुये सिद्धान्त का पुनः प्रचार करना है"** ॥

(४) श्रीमान् मेजर सी. ऐच. प्रिचर्ड साहब बहादुर कमिश्नर. व डायरेक्टर आफ़ पब्लिक इन्सट्रक्शन अजमेर व माड़वाड़ की सम्मति ॥

इन साहब बहादुरने ताः २६ अक्टूबर ०७ ई० को" श्रीमद्दयानन्दाश्रम ऐंग्लो वैदिक हाई स्कूल" अजमेर के परीक्षोत्तीर्ण विद्यार्थियों को पुरस्कार बांटने के उद्देश्य से सभापति का आसन ग्रहण किया था-जिस में मेजर महाशय ने सभापति के नियमानुसार सभ्यसभासदों को धन्यवाद देते हुये स्कूल के कार्य्यावाही पर विशेष प्रशंसा की तत्पश्चात् आर्यसाज के विषय में जो सम्मति साहब बहादुर ने निष्पक्ष भाव से प्रकट की है वह यह है:—

मुझे इस बात का पूर्ण विश्वास है कि स्वामी दयानन्द की यह मनोभिलाषा थी कि सम्पूर्ण आर्यसमाजों का एक यही उद्देश्य होना चाहिये कि जिस से सदाचार व देशोन्नति, सत्संग और धार्मिक कुसंस्कार का पुनः संशोधन होवै और वर्त्तमान राजनैतिक (Political) भ्रमर तरंग से सदैव घृणा करना चाहिये। देखो परोपकारी पत्र अजमेर कार्तिक सं० १९६४ ॥

(५) श्रीमान् आनरेबिल डाक्टर रूदरफोर्ड जी सभ्यसभासद (मेम्बर) पार्लिमेण्ट लन्दन (इंगलेण्ड) की सम्मति

आर्यसमाज सामाजिक सुधार का एक ज़रिया है । मैंने कोई

ऐसा चिन्ह नहीं देखा जिससे वह राज विरुद्ध पाया जावै । प्रत्युत विद्या सम्बंध में उसने अच्छा उपकार किया है । देखो हिन्दी केसरी नागपुर २२ फरवरी १६०८ ई० ॥

(६) श्रीमान् मानचेस्टर गार्डियन के प्रतिनिधि मि० नोविन्सन साहब की सम्मति ॥

हिन्दुस्तान की सरकार सदैव डरपोक तथा वहमी रही है— आर्यसमाज की राजनैतिक संख्या किसी खास दुशमनी के कारण ठहराई गई है कि मैं एक सिपाही को जानता हूं जोकि अच्छे स्वभाव का है, सिक्खरेजीमेण्ट से वह केवल आर्यसमाज से सम्बंध होने के कारणही अलाहिदा करदिया गया । समाज के कुछ सभासद राजनीति में दखल देते हैं, क्योंकि वर्त्तमान राजनैतिक प्रश्न प्रत्येक उदार हृदय मनुष्य को अपनी २ ओर खींच लेते हैं । किन्तु समाज का राजनीति से कुछ सम्बंध नहीं है, यह एक धार्मिक संस्था है, सार्वभौम समुदाय (Universal church) है । जोकि धर्म का भाव स्फुरित करती हुई वैदिक सिद्धांत बतलाती है । हिन्दुस्तानकी सरकारने भी इसको (आर्यसमाज) राजविद्रोह का केन्द्र समझने में गहरी भूल की है ॥ देखो आर्यमित्र १ अप्रेल १६०८ ई० ॥

(७) श्रीमान्यवर सहयोगी जी श्री वेंकटेश्वर समाचार—मुम्बई की सम्मति ॥

पंजाब में आर्यसमाज का बड़ा ज़ोर है । वहांके बहुतेरे शिक्षित आर्य सिद्धान्त माननेवाले हैं । और शिक्षित लोगही राजनैतिक आन्दोलनों में शामिल हैं । सो स्वभावताही पंजाबी राजनैतिक आन्दोलन में आर्यसमाजिकों की अधिकता है । विशेषता यह हुई कि लाला लाजपति राय को देश निकाला हुआ । वेराज नैतिक मुखिया होने के साथही आर्यसमाज के मुखिया पहिले से ही हैं । उधर रावलपिंडी की गड़बड़ी में जो पकड़े गये हैं उनमें अधिकांश आर्य-समाजी हैं । लाहोर के "हिन्दुस्तान" सम्पादक पकड़े गये हैं वे भी आर्यसमाजी हैं, और कदाचित् लाला पिन्डी दास भी आर्य

सिद्धान्तों से सहानुभूति रखते हैं, सो पुलिस के गुप्तचरों को सहजही में अफ़सरों से यह जड़ देने का मौक़ा लगा कि आर्यसमाज राजनैतिक संस्था है। अतएव राजविद्रोही है। उच्च गोरे अफसर इस देश के विषय में स्वयं तो कुछ जानते नहीं और देश के सच्चे विद्वान् मुखियों से मिलकर जानकारी बढ़ाने में वे अपना अपमान सा समझते हैं, इस लिये उन्हें पुलिस की आखों से देखना पड़ता है, पुलिस उन्हें जैसा उलटा पुलटा, काला कबरा, सच्चा झूठा सुझा देती है वही उन के लिये लोहे की लकीर हो जाती है। सो पञ्जाबी अफसरों को यहां तक कि छोटेलाट को भी यही विश्वास हो गया है कि आर्यसमाज पोलिटिकल सभा है। छोटेलाट ने स्वयं क़बूल किया है कि मुझे प्रत्येक ज़िले के अफसरों ने यही रिपोर्ट दी है, परन्तु विचारने की बात है कि उन अफसरों को रिपोर्ट किसने दी। उलटी निगाह से देखने वाली पुलिस ने ही न!

मालूम पड़ता है अफसरों की हां में हां मिलाने वाले कुछ खुशामदियों ने भी इस विषय में "जी हजूर" कह दिया है। सो जो लोग अपनी आखों से नहीं देखते उन्हें वैसा विश्वास हो जाना आश्चर्य की बात नहीं है। मुसलमानों को समाजी बनाने के कारण वे उन पर जलते हैं सो वे भी इस मौक़े में उस की बुराई करने से न चूके होंगे। अन्य विषय का बदला अन्य मामिले में चुकाने की क्षुद्र और संकुचित वणिक सच्चे हिन्दू से विरुद्ध इच्छा रखने वाले पंजाब के एक दो सनातन धर्मी उर्दू अखबारों ने भी इस बुरे मौक़े पर आर्यसमाज के विरुद्ध हो हा मचाई है! इसे देखकर हमें दुःख हुआ है, इस में सन्देह नहीं कि आर्यसमाज धर्म विषय में हमारा प्रतिद्वन्दी है, और उस के द्वारा हमारे सनातन सिद्धान्तों पर बड़ा धक्का पहुंच रहा है, इस लिये धार्मिक मामिलों में हमें उस के साथ प्रबल विरोध की ही आवश्यकता पड़ती है। परन्तु हम हिन्दुओं का हृदय इतना क्षुद्र नहीं होना चाहिये कि सार्व जनिक मामिलों में भी हम आर्यसमाज से बांके टेढ़े ही बने रहें! यही कारण है हम सार्व जनिक कार्यों में राष्ट्रीय आन्दोलनों और मामिलों में आर्य समाज से सदा सहानुभूति ही दिखाते आ रहे हैं, हमारे जो हिन्दू

भाई ऐसे मौक़े पर भी आर्यसमाज की बुराई करते हैं, उन्हें युधिष्ठिर की उस नीति का स्मरण करना चाहिये जो उन्हों ने अपने भाई से उस समय कही थी जब दुर्योधन को गन्धर्व उठाये लिये जा रहा था। यद्यपि दुर्योधन के द्वारा युधिष्ठिर आदि को राज्य त्यागना पड़ा था और बनबास का कष्ट भोगना पड़ा था तब भी उन्हों ने यही कहा था कि हमारा दुर्योधन का झगड़ा घराऊ झगड़ा है आपस के झगड़े में वे सौ और हम पांच हैं किन्तु दूसरे से काम पड़ने पर हम एक सौ पांच हैं, हम सबों को मिलकर उस का प्रतिकार करना चाहिये।

आर्य समाजी कैसे ही हैं परन्तु हमारे हैं। जब काम पड़ेगा तब हम उन से झगड़ेंगे, परन्तु यह कोई बात नहीं कि राष्ट्रीय काम आने पर उन से विरोध कर हम अपनी मूर्खता दिखावें और अपने ही पैरों कुल्हाड़ी मारें। आर्यसमाज को इधर उधर की चोटों ने विचलित नहीं किया था, परन्तु पंजाबी अफसरों के टूट पड़ने पर वह विचलित हुआ है। उस ने सफाई के इज़हार देने शुरू किये हैं कि आर्यसमाज पोलिटिकल सभा नहीं है किन्तु धार्मिक समाज है। पंजाब के समाजों से नहीं किन्तु युक्त प्रदेश के समाजों से भी वैसा ही स्वर लगा है। आर्यसमाज के अख़बार कहने लगे हैं कि आर्यसमाज का मुख्य उद्देश्य वेद प्रचार करना है। हमारी समझ में सभी जानते हैं कि आर्यसमाज धार्मिक संस्था है—राजनीति से उस का सम्बन्ध नहीं है। और जो इतना जानने पर भी दुराग्रह के साथ उसे पोलिटिकल समाज बनाते हैं—उन्हें मूर्ख, बज़्र मूर्ख, द्वेषी, कुटिल द्वेषी समझना चाहिये। फिर यदि कोई आर्यसमाज का राजनीति से सम्बन्ध दिखाने के लिये हठ ही करते हैं, उनके सामने हमें कह देना चाहिये कि हां! आर्यसमाज का राजनीति से भी सम्बन्ध है और खूब सम्बन्ध है। हिन्दू धर्मके धर्मशास्त्र राजनीति राज्यकार्य आदि के नियम उपदेशों से भरे पड़े हैं वेही धर्मशास्त्र आर्यसमाज के भी मान्य हैं, तब हम कैसे कहें कि उसका राजनीति सम्बन्ध नहीं है, आर्यसमाज नाहक़ डरता

है, हम डंके की चोट कहते हैं कि आर्यसमाज का राजनीतिसे सम्बन्ध है, हिन्दूधर्म राजनीति से पूर्ण है, यही क्यों संसारके सब धर्म पोलिटिकल सिद्धांतों से जुड़े हुये हैं, जो अंगरेज़ आर्यसमाज को जबरदस्ती पोलिटिकल समाज बनाकर उसका अनिष्ट चीतना चाहते हैं, वे पहिले अपने ईसाई धर्मको तो देखें, इतने दिनों के अनुभव से देखा गयाहै कि ईसाई नरेश जिस देशको अपना ग्रास बनाना चाहते हैं, वहां पहिले पादरियों के पादस्पर्श होते हैं, वहां पहिले ईसाई धर्म के सुसमाचार सुनाये जाते हैं। ऐसी दशामें कौन कहेगा कि ईसाई धर्म पोलिटिकल समाज नहीं है, अच्छा मुसलमानी धर्म की ओर देखिये वे लोग जब लड़ाई करते हैं, किसी देश का विजय करने के लिये निकलते हैं तब "दीन, दीन" शब्द का उच्चारण करते हैं अंगरेज़ी इतिहास लेखकों ने लिखा है कि मुसलमान बादशाह एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथमें कुरान लेकर धर्म प्रचार करते थे, तलवार का राजनीति से अभिन्न सम्बन्ध है, तब पाश्चिमात्य लेखकों के मुंहसेही मुसलमानी धर्म पोलिटिकल सिद्धान्तोंवाला सिद्ध हुआ। जब ईसाई धर्म पोलिटिकल सिद्धांतों से सम्बन्ध रखता है, तब यदि आर्यसमाज का पोलिटिकल सिद्धांतों से सम्बन्ध हो तो वह भयानक अपराध क्यों हुआ। ऐसी बात कहने वाले पहिले अपने धर्मो को पोलिटिकल सिद्धान्तों से शून्य कर दिखावैं—तब हिन्दू या अन्य किसी हिन्दुस्तानी धर्मको कुछ कहने के लिये मुंह खोलने का साहस करैं। बात यह है कि पंजाब के जिन लोगों के कारण ऐसी बातें कहने का अंगरेज़ों को अवसर मिला है वे लोग कुछ आर्यसमाजकी ओर से आन्दोलन में शामिल नहीं होते थे। व्यक्तिगतभावसे वे आन्दोलन करते थे, और हरएक व्यक्तिको आईनसंगत इच्छित आन्दोलनों में शामिल होने की सरकारने स्वतन्त्रता दे रक्खी है। लार्ड मिन्टो या लार्ड इवटेशन ईसाई धर्मयुक्त हैं वे रात दिन पोलिटिकल मामिलों में लिप्त रहते हैं, पोलिटिकल कार्यही उनकी जीविका है, वे गिरजों में जाकर ईसाई धर्मानुमोदित प्रार्थना भी किया करते हैं, परन्तु उनके गिरजों में जाने से यह कोई नहीं कहता कि ईसाई धर्म पोलिटिकल धर्म है। फिर आर्यसमाज में

लाजपतिराय या हंसराज आदि के जाने सेही वह पोलिटिकल संस्था कैसे होगई ॥

उर्दू मासिक आर्यसमाचार में " आर्यसमाज और पॉलिटिक्स " लेख देखकरही हमें इतनी लिखने की इच्छा हुई, यदि आग्रही लोग नहीं मानते तो आर्यसमाज को व्यर्थ दुहाई तिहाई मचाने की ज़रूरत नहीं है, और हिन्दू धर्म माननेवाले को या आर्यसमाज को इससे कोई हानि नहीं है, ऐसा कौन धर्म है, जिसका राजनीति से कुछ सम्बन्ध न हो-यदि धर्म में राजनीति के तत्वों का लेश न रहै तो राज्य से उसे किसी तरह की सहायता ही न मिलसके। फिर धर्म के मानने वाले सब सन्यासी और त्यागी तो होते ही नहीं वे धार्मिक होने के साथ नागरिक भी तो होते हैं, तब वे राजनीति से अलिप्त कैसे रह सक्ते हैं, आर्यसमाज नाहक में फट फटा रहा है! वह अपने सिद्धांतों में लगा रहै, अगर उस का पक्ष सत्यका है तो उस के लिये घबड़ाने का कोई कारण नहीं है। कर नहीं तो डर क्या! देखो श्रीवेंकटेश्वर समाचार ॥

यह आर्यसमाज के गौरव पर विदेशीय व स्वदेशीय विद्वानों की सम्मत्तियों का विषय समाप्त ॥

॥ शमित्योम् ॥